आँखों देखा रूस

[लेखक की 'आमार देखा रशिया' का हिन्दी अनुवाद]

लेखक

श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार

अनुवादक

विष्णुदत्त 'विकल'

●

१९५३

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

काश्मीरी गेट

दिल्ली ६

प्रकाशक—
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली

मूल्य दो रुपये

मुद्रक—
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
१० दरियागंज
दिल्ली

अनुवादक की ओर से

सन् १९५१ में रूस के लेखक-संघ द्वारा भारत के कतिपय प्रमुख साहित्यिकों तथा कलाकारों को निमंत्रित किया गया। इस निमंत्रण का उद्देश्य दोनों देशों में पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करना था। भारत की ओर से जो सांस्कृतिक प्रतिनिधि-मण्डल रूस गया था उसके एक प्रतिनिधि बंगाल के वयोवृद्ध यशस्वी पत्रकार तथा लेखक श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार भी थे। उन्होंने रूस में जो कुछ अपनी आँखों से देखा तथा जो अनुभव प्राप्त किये, उन सबका विवरण 'आमार देखा रशिया' में किया है। इस पुस्तक का बंगाल में भारी स्वागत हुआ। इसका एक कारण तो यह है कि रूस के सम्बन्ध में, इससे पहले इतने संक्षिप्त तथा तथ्य-पूर्ण प्रत्यक्ष अनुभवों के आधार पर प्रायः बहुत कम लिखा गया है। दूसरा कारण है श्री मजूमदार की रोचक वर्णन-शैली और प्रवाहमयी भाषा। पुस्तक इतनी दिलचस्प है कि एक बार शुरू करने पर समाप्त किये बिना जी नहीं मानता।

रूस एक साधन-सम्पन्न, शक्तिशाली और सामर्थ्यवान् राष्ट्र है। विश्व की राजनीति आज रूस की उपेक्षा नहीं कर सकती। पिछले काफी दिनों से रूस के बारे में साम्राज्यवादी देश मनगढ़ंत तथा भ्रान्त धारणाओं का प्रचार करते आ रहे हैं। उनकी दृष्टि में रूस एक 'रहस्य' है, वह एक ऐसा 'लौह द्वार' है जिसके पीछे भीषण षड्यंत्र रचे जाते हैं। इस प्रचार का फल यह हुआ कि सामान्य स्तर के लोग रूस को 'हौवा' समझ बैठे हैं।

साम्यवादी सिद्धान्तों से आपका चाहे कितना ही मत-भेद क्यों न हो, लेकिन इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि रूस जिस प्रगति से अपनी निर्माणकारी योजनाओं को साकार रूप देता जा रहा है उससे साम्राज्यवादी देश भयभीत हो रहे हैं। शोषित और पद-दलित मानवता की मुक्ति का श्रेय भी रूस को ही है। वहाँ मानव अपने मौलिक अधिकारों से वंचित नहीं है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र उसके लिए उन्मुक्त है। रूस के मानव का मान-दण्ड उसका श्रम है और है उसकी कर्तृत्व-शक्ति।

द्वितीय महायुद्ध के बाद तो आश्चर्यजनक ढंग से रूस ने निर्माण के क्षेत्र में प्रगति की है। फिर भी रूस के सम्बन्ध में गलतफ़हमी पैदा की जा रही है। श्री सत्येन्द्रनाथ मजूमदार ने 'आमार देखा रशिया' में उन सभी भ्रान्तियों को दूर करने का प्रयत्न किया है और वे उसमें काफी सफल भी हुए हैं।

बंगला में इस पुस्तक का दूसरा संस्करण निकल चुका है। इसका अनुवाद तामिल, तेलगू तथा अन्यान्य कई प्रान्तीय भाषाओं में हो चुका है तथा हो रहा है। इसके अतिरिक्त अँगरेजी अनुवाद भी हो चुका है। पुस्तक की लोकप्रियता का इससे ही कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। हमें विश्वास है कि हिन्दी-भाषा-भाषी जनता और खास तौर पर नई पीढ़ी के तरुण पाठक इसका स्वागत करेंगे।

जहाँ तक अनुवाद का सम्बन्ध है उसमें मूल लेखक की भावनाओं का खास तौर पर ध्यान रखा गया है। यत्र-तत्र जो थोड़ा-बहुत परिवर्तन करना पड़ा वह अनुवाद की सुविधा तथा स्पष्टता के खयाल से ही किया गया, लेकिन उसमें भी मौलिकता की पूरी रक्षा की गई है। अनुवाद में मुझे 'अमरभारत' के सम्पादक भाई 'माधव' जी से समय-समय पर परामर्श मिलता रहा है। उन्होंने इसे एक बार आद्योपान्त देखकर यथोचित संशोधन में सहायता दी है। उन्हें धन्यवाद देकर मैं उनकी आत्मीयता को कम नहीं करना चाहता।

—अनुवादक

आँखों देखा रूस

एक

लौह-यवनिका के उस पार से जब सोवियत लेखक-संघ का निमंत्रण-पत्र मिला, तब यह पता नहीं था कि इस पार भी एक खादी-यवनिका है—अहिंसा और निरपेक्षता की महिमा से उज्ज्वल, दूध के समान धवल, परन्तु उस पर भी सुरक्षा-पुलिस की एक अस्पष्ट छाया-मूर्ति खेला करती है। उस छाया-मूर्ति को पहचाना नहीं जा सकता, लेकिन समझा जा सकता है। बम्बई के दो पत्रकारों ने पासपोर्ट प्राप्त कर लिये थे, परन्तु ऐन वक्त पर वे रद कर दिये गए। तीन व्यक्तियों को पासपोर्ट देने से इन्कार कर दिया गया। ७ जून १९५१ को बम्बई से ५ व्यक्तियों ने, जिनमें पत्रकार, लेखक, कवि और वैज्ञानिक थे, एक वक्तव्य प्रकाशित कराया। उस वक्तव्य में कहा गया था—"ब्रिटेन तथा अमेरिका आदि देशों की यात्रा करने वालों को पूर्ण सुविधाएँ दी जाती हैं, लेकिन सोवियत रूस तथा जनतांत्रिक चीन-जैसे देशों की यात्रा करने वालों के मार्ग में अनेक प्रकार की बाधाएँ खड़ी की जाती हैं। संसार के किसी शक्ति-शिविर में सम्मिलित न होकर तटस्थ रहना ही हमारी वैदेशिक नीति का मूलाधार है, परन्तु यह व्यवहार इस घोषित नीति के विपरीत हो जाता है।

हम व्यक्तिगत और सम्मिलित भाव से चेष्टा करने पर भी गवर्नमेण्ट की पासपोर्ट न देने की नीति का युक्ति-संगत कारण जान नहीं पाए। गवर्नमेण्ट की नीति दुर्बोध्य ही रह गई। अन्त में बाध्य होकर इस निर्णय पर पहुँचना पड़ रहा है कि मास्को से निमंत्रित होना ही हमारा सबसे बड़ा अपराध है। परन्तु इस बात का कोई युक्ति-संगत कारण भी न बतायँगे कि हमारा भारत से बाहर जाना अवांछनीय क्यों है। लेकिन इस प्रश्न के साथ नागरिकता का प्रश्न जुड़ा हुआ है। इसलिए हमारी माँग है कि वे हमारे और जनता के सामने सफाई तो पेश कर दें।"

११ जून को नई दिल्ली के एक पत्रकार-सम्मेलन में स्वयं प्रधान मंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने सफ़ाई दी। उन्होंने कहा—"३९ व्यक्तियों को निमंत्रण-पत्र मिले, जिनमें ३० को पासपोर्ट दिये गए। किसी की विदेश-यात्रा के मार्ग में बाधा डालने का प्रश्न ही नहीं उठता। पासपोर्ट न देने का कारण यह नहीं है कि वे रूस जाना चाहते हैं। कायदे से प्रान्तीय सरकारों को भी इस सम्बन्ध में कुछ कहना होता है। जिन्हें पासपोर्ट नहीं मिला उनके पिछले 'कार्य-कलापों' को देखकर

प्रान्तीय सरकारों ने असहमति प्रकट की है।"

पिछले तीस वर्षों से मैं बंगाल के समाचार-पत्रों में काम कर रहा हूँ। यह जानकर मैं विस्मित और क्रुद्ध हो उठा कि स्वाधीनता मिल जाने के बाद भी मेरे पिछले 'कार्य-कलाप' प्रान्तीय सरकार के लिए दुश्चिन्ता का कारण बने हुए हैं। पासपोर्ट मिले या न मिले, परन्तु यह अपवाद चुपचाप हजम कर जाना मेरे लिए असंभव हो गया। नई दिल्ली के वैदेशिक-विभाग को मैंने लिखा। तार के उत्तर में सूचना मिली कि पासपोर्ट स्वीकृत हो गया। १५ जून की संध्या को पास-पोर्ट लिया और उसी रात की गाड़ी से दिल्ली के लिए चल पड़ा। आखिर 'खादी-यवनिका' उठ गई।

१९ जून को प्रातःकाल हम १६ भारतीय वैज्ञानिक, चिकित्सक, पत्रकार और साहित्यिक दिल्ली के हवाई अड्डे से एक विमान द्वारा मित्रों और बन्धु-बान्धवों से विदा लेकर लाहौर की ओर उड़े। मध्याह्न में फ्लैटी होटल में विश्राम करके सायंकाल रेल द्वारा पेशावर के लिए रवाना हो गए। पेशावर पहुँचने पर अफ़ग़ान-कौंसलर ने हमारा स्वागत किया तथा काबुल-यात्रा की सारी व्यवस्था कर दी।

जमरूद पहुँचने पर हमारे पासपोर्टों की छान-बीन हुई। फिर कुछ दूर आगे चलकर रूसी दूतावास के एक रूसी सज्जन मिले और वह हमारे साथ हो लिए। खैबरपास—टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता। तरु-गुल्म-हीन, सूखी और लहरों-जैसी पर्वत-मालाओं में ब्रिटिश सरकार ने साम्राज्य-रक्षा के लिए चमत्कारपूर्ण ढंग से मार्ग बना लिया। एक रेलवे-लाइन भी खैबर के पश्चिमी छोर लंडीखाना तक गई है। मैं इससे पहले दो बार लंडीखाना तक हो आया हूँ। तब यह स्थान ब्रिटिश-भारत का सीमान्त था। हमारी मोटर तोरखाम पहुँचकर रुक गई—हम अफ़ग़ानिस्तान की सीमा में पहुँच गए।

लौह-द्वार उन्मुक्त हुआ। ऊबड़-खाबड़ मार्ग था, जैसे हम किसी सूखी हुई पहाड़ी नदी की पथरीली छाती पर झटके खाते हुए चल रहे हैं। नंगी पर्वत-मालाओं पर कहीं-कहीं छोटे-छोटे किले या पहरा देने वाली गाड़ियों के ध्वंसावशेष दीख पड़ते थे। कहीं-कहीं मिट्टी के छोटे-छोटे घर हैं, जिनके पास कुछ हरियाली दीख पड़ती है। डक्का पहुँचे तो पासपोर्टों की पड़ताल फिर हुई। युवक आफिसर ने भरपूर सौजन्य प्रदर्शित किया। हम सबको उसने तरबूज़ और खरबूज़े खिलाए। बीच में तेज़ धारी वाली नदी बह रही थी। उसके दोनों ओर हरे-भरे खेत दूर-दूर तक फैले हुए थे। देखते ही आँखें शीतल हो गईं। कुछ देर विश्राम करने के बाद हम लोग चल पड़े और फिर जलालाबाद पहुँचे। तब पेट में चूहे कूदने लगे थे। किन्तु रमजान का महीना होने के कारण खाने की बात तो दूर रही,

एक प्याला चाय तक नसीब न हुई। शहर में खाने-पीने की भी दुकानें बन्द थीं। वहाँ देखा—लोग स्थान-स्थान पर शरबत का गिलास लिये तथा पश्चिम की ओर मुख किये हुए बैठे हैं, तोप दगते ही रोजा खोलेंगे। हताश होकर यात्रा फिर शुरू कर दी। नौ बजे रात को हम लोग सुरैया सराय पहुँचे। दोपहर में वहाँ असह्य गर्मी थी। यहाँ आकर ठण्डी-ठण्डी हवा के कारण शरीर को अत्यन्त सुख मिला। यह सराय जर्मनों ने बनाई थी। इसमें आराम देने वाली किसी भी आधुनिक चीज़ का अभाव नहीं था। खाने-पीने से निवृत्त होकर बाहर चबूतरे पर पड़े हुए पलंग के मुलायम बिस्तरे में कम्बल ओढ़कर लेट गए। फूलों की धीमी-धीमी मधुर सुगन्ध, चिनार-वृक्षों की मर्मरध्वनि, निर्झरिणी का अविरल कलरव और चन्द्रमा की तरल चाँदनी ने वातावरण को अत्यन्त मनोरम कर दिया था।

बुधवार २० जून को प्रातःकाल जल-पान करने के बाद यात्रा प्रारम्भ हुई। यहाँ से काबुल लगभग ४० मील था। नीचे-ऊँचे पर्वतों को चीरती हुई काबुल नदी पूरे वेग से बह रही थी। नदी के जल पर कोई नियंत्रण नहीं, और न सिंचाई आदि की ही कोई आधुनिक व्यवस्था है; खेती-बाड़ी का सारा काम पुराने यंत्रों और दृढ़ मांस-पेशियों पर निर्भर करता है। कृपण प्रकृति की दया ही है एक-मात्र ग़रीब किसानों का एक-मात्र सम्बल। सुना जाता है, जल-विद्युत्-गृह तथा सिंचाई आदि की आधुनिक व्यवस्था करने का ठेका अमेरिका की एक कम्पनी को दिया गया है। लेकिन तीन साल होने को आए अभी तक पैमाइश ही हो रही है। अफ़ग़ानिस्तान में अभी भी यंत्र-शिल्प का अभाव है और सामन्त-कालीन पुरानी व्यवस्था चालू है। रास्ते में देखा—ऊँटों, गधों और खच्चरों की पीठ पर घरेलू उपभोग की चीजें तथा बकरियाँ व मुर्गियाँ लादे हुए, कतार बाँधकर लोग ले जा रहे हैं। ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ रहे थे रास्ता अधिक विस्तृत होता जा रहा था। दोनों ओर हरे-भरे खेत, फलों के बाग़, वृक्षों और लताओं से घिरे पक्के मकानों को देखते-देखते काबुल शहर के मुख्य द्वार पर पहुँच गए। यहाँ पर अफ़ग़ान-सरकार, सोवियत तथा भारत के दूतावास के प्रतिनिधियों ने हमारा स्वागत किया। हम लोग अफ़ग़ान-सरकार के प्रतिनिधि के रूप में काबुल होटल पहुँचे।

हिन्दूकुश पर्वत के दक्षिण में काबुल शहर है और बीच में काबुल नदी। बाज़ारों और चौक में गन्दगी तथा विशृंखलता हमारे यहाँ के शहरों-जैसी ही है। नया शहर बहुत-कुछ साफ है। यहाँ भी चौरंगी है और कलकत्ते-जैसी मामूली बस्तियाँ भी हैं। राज-मार्ग की बगल वाली गली में घुसते ही दरिद्र, मैले, नंगे और धूलि-धूसरित शिशुओं के वृंद ने प्राच्य के अचलायतन का स्मरण करा दिया।

हमने बादशाह अमानुल्ला का राजमहल, संग्रहालय तथा बाबर की समाधि आदि के दर्शन किये। रात को होटल में अफ़ग़ानिस्तान के स्वराष्ट्र-सचिव ने एक विराट् भोज का आयोजन करके हमें परितृप्त किया। बहुत रात तक नृत्य-गीत होता रहा। काबुल के उस्तादों का संगीत और वाद्य-यन्त्र हू-बहू भारतीय ढंग के ही प्रतीत हुए।

२२ जून को प्रातःकाल हम काबुल के हवाई अड्डे पर पहुँचे, रूसी हवाई जहाज प्रस्तुत था। सोवियत रूस की जय-ध्वनि के साथ हमारा विमान आकाश पर उड़ा। विमान बहुत ऊँचाई पर उड़ रहा है—नीचे हिन्दूकुश पर्वतमाला के काले, कठोर और अनेक एवं विचित्र आकार-प्रकार वाले तुषार-स्तूप फैले हैं। देखते-देखते हम आमू नदी पार करके रूस की सीमा में स्थित तरमेज़ नामक शहर में उतरे। तरमेज़ अफग़ानिस्तान और उजबकिस्तान की सीमा पर एक छोटा-सा शहर है और सोवियत रूस की रेलवे-लाइन का अन्तिम स्टेशन। सूटकेस आदि की जाँच-पड़ताल तथा पासपोर्ट आदि देख लेने के बाद विमान पुनः आकाश-मार्ग पर उड़ा। बहुत थोड़े समय बाद ही हम उजबेक प्रजातंत्र की राजधानी ताशकन्द में पहुँच गए। स्थानीय लेखक-संघ ने महिला-कवि जुलफियार की अध्यक्षता में हमारा स्वागत किया। यहाँ से हमारा भार सोवियत लेखक-संघ के वैदेशिक विभाग के सहकारी सभापति मिकायल ऐप्लेटिन ने ले लिया। मिकायल महाशय की आयु तिरसठ वर्ष की है, सुगठित देह वाले, शक्तिशाली और सदैव प्रसन्न रहने वाले व्यक्ति हैं। परिहास-प्रियता उनका विशेष गुण है। आप रूसी को छोड़कर अन्य कोई भाषा नहीं जानते। इनके अलावा जो आठ सप्ताह पर्यन्त हमारे संग रहीं और दुभाषिये का काम करती थीं, उनसे भी हमारा परिचय हुआ। वह हैं कामरेड अकसाना सिमनोवा। वे विधवा युवती हैं, उनके स्वामी महायुद्ध में निहत हो चुके हैं। एक कन्या है। कामरेड अकसाना-जैसी परिमार्जित रुचि रखने वाली, दृढ़ चेता और विदुषी महिला जीवन में बहुत कम देखी हैं। अपनी निस्संकोच सरलता से कुछ ही क्षणों में आत्मीय बन गई हैं। इनकी निरलस सेवा, हर बात के पूरे ब्यौरे को स्वयं देखने का आग्रह और आदरपूर्ण सत्कार से मुग्ध हो गया हूँ। मेरे अपटु शरीर के खाने-पीने और विश्राम करने के विषय में सदा सतर्क रहती हैं। अभिभावक की भाँति निषेध करती हैं और उपदेश देती हैं। मैं इन्हें 'बहू माँ' कहता हूँ। जब इन्होंने पूछा कि बहु माँ का क्या अर्थ है तो मैंने जवाब दिया—'पुत्र वधू'। सुनते ही हँसी से लोट-पोट हो गईं। कर्तव्य में कठोर, कर्म में निरलस, कामरेड अकसाना आधुनिक सोवियत-समाज की एक आदर्श नारी हैं।

ताशकन्द शहर छोटा नहीं है। जनसंख्या सात लाख से भी अधिक है।

जारशाही के जमाने में यहाँ खास उद्योग-धंधे नहीं थे। दरिद्र किसान-मज़दूरों के मिट्टी के मकान और खानाबदोशों के तम्बू ही थे। गन्दी बस्ती, सरकारी कर्मचारियों के घर और कचहरी आदि का ही यह देहाती शहर था। वर्तमान नगर देखकर मैं विस्मित हुआ। सड़कें चौड़ी हैं, उनके बीच में दोनों ओर फूल वाले पेड़ों की पंक्तियाँ हैं। बीच में पैदल चलने का मार्ग है। ट्रामें, बसें और ट्राली बसें चलती हैं। आधुनिकतम नगर की पूरी व्यवस्था है। चारों ओर सफाई है। देखते-भालते हम एक बगीचे में आ गए। बाग में उजबेक के जातीय कवि अलीशेर बेग की प्रकाण्ड मूर्ति है। दाहिनी ओर उसके नाम पर प्रतिष्ठित पाँच खंड का एक विशाल संगीत-संस्कृति-भवन है। हमारे वहाँ बैठते ही बालक-बालिकाओं का झुण्ड हमें घेरकर खड़ा हो गया। विदेशी देखकर उन्हें बहुत कौतूहल हो रहा है। हमने जब अपनी ओर संकेत करके उन्हें बताया कि हम 'हिन्दी' हैं तो उनमें उल्लास की लहर छा गई। किसी ने अपने को रूसी बतलाया, किसी ने उजबेक, तातार, तुर्क और ताजिक कहकर परिचय दिया। वेश-भूषा और आचार-विचार से देख रहा हूँ, इस नगर में मध्य एशिया के सभी सोवियत प्रजातंत्री प्रदेशों के लोग हैं। और जारकालीन प्रवासी रूसी भी। मध्य एशिया के वस्त्रोद्योग का यह प्रधान केन्द्र है। ताशकन्द से ही २२ जून को हमारे रूस का भ्रमण प्रारम्भ हुआ और ताशकन्द में ही ४ अगस्त को समाप्त हो गया।

बहु-भाषा-भाषी तथा कितनी जातियों वाला रूस एक विशाल देश है। हमने प्रायः छः-सात सप्ताह तक विमान, ट्रेन और मोटर द्वारा हजारों मील का निरन्तर भ्रमण किया। उत्तर में लेनिनग्राद, मध्य में मास्को और स्तालिनग्राद, दक्षिण-पूर्व में समरकंद, दक्षिण-पश्चिम में कृष्णसागर के तट पर काकेशस पर्वत-मालाओं के अञ्चल में सुकुमारी और गागरी तक घूमे हैं। एशिया के जार्जिया और उजबेकिस्तान दोनों रिपब्लिकों के ग्राम और नगर देखे हैं। तीस वर्ष पहले जार-तंत्र और शासन-तंत्र के शासन और शोषण द्वारा यहाँ के किसान और श्रमिक निर्धनतम, निरक्षर और कुसंस्कारों से पंगु थे; हमारे देश के समान ही दशा थी। हमारे ही यहाँ की भाँति मुट्ठी-भर धनी, जमींदार और सरकारी नौकर, खाते-पीते मध्यवर्ग के शिखर पर मोर-पंख की भाँति विराजमान थे। रूस के इस दुर्भाग्यपूर्ण जन-जीवन का चित्र हम टालस्टाय, तुर्गनेव और गोर्की की रचनाओं में देखते हैं। लक्ष-लक्ष मानव पशु से भी हीन दशा में किस प्रकार नत-शिर और अपमानित होकर जीवन यापन करते हैं, यह सब हम अपने ही देश में आँखों के सामने देखते हैं। जो जितने ही अधिक कठोर परिश्रमी हैं, समाज में उनकी उपेक्षा और असम्मान भी उतना ही अधिक है। हर प्रकार से हीनता स्वीकार करके शूद्र, दास-तुल्य बनकर समाज की सुविधा-भोगी श्रेणी के लिए धन, ऐश्वर्य और

ऐशो-आराम की व्यवस्था करेंगे—धर्म-तंत्र में यह विधान शताब्दियों पहले ही पक्का कर दिया गया है। यह दुर्बल और निरुपाय लोग किसी दिन संगठित होकर मनुष्य के अधिकारों की माँग करेंगे—ऐसी कल्पना भी अगोचर थी। हजारों वर्षों के प्रयत्नों द्वारा निर्मित समाज तथा राष्ट्र-व्यवस्था के दुर्भेद्य दुर्ग को धूलिसात् करके सोवियत रूस ने मानव-मात्र के समानाधिकार की भित्ति पर एक नई समाज-व्यवस्था प्रतिष्ठित की है, जिसकी प्रशंसा और निन्दा चिर काल से सुनता आ रहा हूँ।

१९१७ के अक्तूबर की महान् क्रान्ति, लेनिन और स्तालिन-चालित बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में समाजतांत्रिक व्यवस्था प्रतिष्ठित करने का दुर्वार संकल्प, विश्व-इतिहास में भारी पट-परिवर्तन है। प्रथम महायुद्ध में जर्मनी के आक्रमण मे देश क्षत-विक्षत था, ऐसे समय में विदेशी समाजवादी शक्तियों से दबे हुए, क्रान्ति-विरोधियों के कृतघ्नतापूर्ण आघातों को पार करके शिशु सोवियत, अपने पैरों पर खड़ा हो गया। प्रति पाँच वर्ष पीछे एक-एक शताब्दी आगे बढ़ना इसका प्रण है। दुर्भिक्ष, दारिद्रय, अशिक्षा, चिरकालीन दासत्व और शोषण से पंगु मानव की जड़ बुद्धि की लंबी बाधा को पार करके, इन लोगों ने सब प्रकार की शोषक-श्रेणियों का मूलोच्छेद कर दिया। एक संगठित समाजतांत्रिक व्यवस्था निर्मित हो गई जहाँ सर्वसाधारण की इच्छा और उद्योग ने केन्द्रीभूत होकर असंभव को भी संभव बना दिया। उद्देश्य और लक्ष्य की एकता—समाजतांत्रिक कल-कारखाने, सामूहिक कृषि-पद्धति, सार्वजनीन शिक्षा-विस्तार की विस्मयोत्पादक क्षिप्र गति मे जब ये कम्युनिज़्म की ओर बढ़ रहे थे, तब अचानक ही हिटलर की फासिस्त सेना ने कृतघ्नतापूर्ण आक्रमण कर दिया। मनुष्य जाति के इतिहास में किसी भी जाति और देश को ऐसे भयानक युद्ध का सामना नहीं करना पड़ा। मार्शल स्तालिन, भूकम्प के समान इस भयानक उथल-पुथल में दृढ़ता के साथ खड़े रहे। उनके आदेश पर निर्भीक शौर्य से भरपूर लाल पलटन मानव-मुक्ति के रण-क्षेत्र में कूद पड़ी। उनके आघात-प्रतिघात की प्रचण्ड शक्ति से, महासमर की रक्ताक्त वह्नि-शिखा उद्दीप्त हो उठी। सोवियत रूस के दुर्दमनीय कठोर पौरुष, पराक्रम, रण-कौशल और उनकी समाजतांत्रिक उत्पादन-प्रणाली को संसार ने विस्फारित नेत्रों से देखा। अग्नि-परीक्षा में विजयी सोवियत रूस की यह नैतिक शक्ति आज फिर शान्त, समाहित चित्त से गठन और पुनर्गठन के कार्य में सक्रिय है। महायुद्ध में क्षत-विक्षत होकर भी इसने अपनी भिक्षा का हाथ अतलान्तिक के उस पार नहीं पसारा। पूंजीवादी संसार ने इसे अकेला छोड़ दिया है। तब भी इसे ज़रा-सा क्षोभ तक नहीं—वह निःशङ्क है। इस नूतन संसार को आँखों से देखने का सुयोग एक दुर्लभ सौभाग्य

है। कौतूहल था, इसलिए मन में श्रद्धा लेकर ही सोवियत भूमि में आया हूँ। बन्धनों से जर्जर, परस्पर विच्छिन्न इस देश के मेरुदण्ड-हीन मानवों ने केवल तीस वर्ष के अन्दर ज्ञान, आनन्द और सृष्टि के क्षेत्र में कितनी बड़ी मुक्ति दी है, उसी का कुछ परिचय देने की चेष्टा करूँगा।

दो

सत्ताईस जून को हम लोग साढ़े ग्यारह बजे मास्को पहुँच गए। हवाई जहाज के अड्डे पर सोवियत लेखक-मंघ के सदस्यों ने हमें फूलों से लाद दिया। आकाश निर्मल है तथा धूप का उज्ज्वल प्रकाश। आरामदेह तथा प्रशस्त मोटरों में बैठकर रवाना हुए। मार्ग के दोनों ओर वन, उपवन हैं और वार्च के वृक्ष अपनी शुभ्र, समुन्नत और सीधी देह से खड़े हैं। चिनार और ओक पंक्ति-बद्ध तथा उन्नत मस्तक किये हैं। बीच-बीच में उद्यान और उनमें अनेक रंगों के पुष्प विकसित हो रहे हैं। तीस मील की इस सड़क के दोनों ओर कृषि-क्षेत्र भी हैं। नगर के निकट पहुँचते ही पुराने ढंग के भवन भी दीख पड़े। बाईं ओर विश्वविद्यालय का नया भवन भी बन रहा है। छोटे-बड़े क्रेन काम कर रहे हैं। मास्कोआ नदी का पुल पार करके—क्रेमलिन दुर्ग को दाईं ओर छोड़कर हमारी मोटर होटल के दरवाज़े पर रुक गई। होटल का नाम 'होटल नेशनल' है। इस होटल का साजो-सामान मखमल और रेशम के पर्दे, सजे-सजाए शयनागार तथा सुव्यवस्थित भोजनालय आदि की तुलना में बम्बई का ताजमहल होटल भी दरिद्र प्रतीत होता है। इस पाँच खंड वाले होटल में पाँच सौ से अधिक कमरे हैं। हम बराबर इसी होटल में रहे हैं। सात में से हमारे तीन सप्ताह मास्को में बीते। मास्को में इस प्रकार के तथा इससे भी बड़े चार-पाँच अन्य होटल हैं। सुना है, कुछ और भी बड़े होटल बन रहे हैं। मुझे एक सौ सत्ताईस नम्बर का कमरा मिला। पूर्व की ओर खिड़की है। सामने चौथाई मील चौड़ी सड़क के उस पार क्रेमलिन है, जिसकी ऊँची दीवारों के ऊपर जार-कालीन गिर्जों के गुम्बद दीख पड़ते हैं। सड़क के दोनों ओर पंक्ति-बद्ध चिनारों के वृक्ष हैं जो ग्रीष्म-काल में भी पत्तों से घने और हरे हो रहे हैं। ट्रामें, बसें, ट्राली बसें तथा मोटरें चल रही हैं और चल रहा है जल-स्रोत की भाँति जन-स्रोत! भीड़ नहीं है, धक्का-मुक्की नहीं है—किस लोक से किस लोक में आ गया हूँ!

दोपहर बाद पुष्प-मालाएँ लेकर हम रेड स्क्वायर की ओर चले। लेनिन की समाधि के दर्शन करने के लिए जनता की लगभग दो मील लम्बी कतार चल रही है। हमारे पथ-प्रदर्शक ने रूसी भाषा में कहा—"इण्डिस्की पिशाचली डेलीगात्सी"—जनता ने आदरपूर्वक रास्ता छोड़ दिया। रूसी भाषा में लेखकों और साहित्यिकों को पिशाच कहते हैं। हमारे देश में साहित्यिकों और लेखकों की जो दशा है उसके अनुसार इस शब्द का रूसी भाषा में जो भी अर्थ हो, लेकिन हमारी भाषा में जो अर्थ है वह भी असंगत नहीं है। श्रद्धांजलि भेंट करने के बाद

अन्दर गये। संगमरमर की वेदी पर काँच के अण्डाकार आवरण में, युग-युग से पद्-दलित मानवों के मुक्ति-संग्राम का प्रथम और प्रधान सेनानी, महा मानव लेनिन चिरनिद्रा में निमग्न है—प्रशस्त ललाट, दृढ़ निबद्ध ओठ, अपने ढंग की दाढ़ी से सजे हुए कपोल और चिबुक, मानव-मात्र की मुक्ति के मृत्युंजयी संकल्प से दमक रहे हैं। शिरसावनत प्रणाम करके वहाँ से विदा हुए। मनुष्य जाति के इतिहास में यह एक अलौकिक का आविर्भाव है। खिड़की से प्रतिदिन देखता हूँ, आबाल-वृद्ध-वनिता, कतार बाँधकर अपने महान् नेता लेनिन को श्रद्धांजलि भेंट करने जाते हैं। लेनिन और स्तालिन इन दोनों क्रान्तिकारी नेताओं के प्रति जन-साधारण की कितनी अगाध श्रद्धा है! यदि पहला नेता समाज और राष्ट्र का स्रष्टा था तो दूसरा उत्तराधिकारी बनकर उसके आदर्शों को यथार्थ रूप देने वाला है। मैंने देखा, इन दोनों नर-केसरियों की मूर्तियाँ और चित्र घर-घर में हैं। भारत में भी एक दिन दूसरे रूप में ऐसी ही घटना हुई थी। तंत्र-मंत्र की सहायता लेकर ब्राह्मण और क्षत्रिय जब इस देश पर छा गए थे, तब मानवोचित अधिकारों से वंचित स्त्री और शूद्र, भगवान् बुद्ध की जय-ध्वनि के साथ धार्मिक समानाधिकार के नाम पर संघ-बद्ध हुए थे। उस दिन समस्त एशिया भगवान् तथागत की मूर्तियों से छा गया था। युग-युगान्त से मनुष्य नर-पूजक है। अहिंसा, शान्ति, मैत्री तथा मानव-मात्र की कल्याण-कामना का आदर्श जिस व्यक्ति में, जब भी दीप्त हुआ तभी वह व्यक्ति अगणित मानवों का आधार बन गया। रूसियों की वीर-पूजा इस भावना को देखकर बहुतों को विस्मय होगा, परन्तु हम भारतीयों के लिए यह अस्वाभाविक कैसे हो सकता है! हमने भी राजघाट को तीर्थ बनाया है। सरकारी दफ्तरों, अदालतों, विश्वविद्यालयों और बैठकों में गांधी जी की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हो गई हैं।

तेईस जून से लेकर छः जुलाई तक हम मास्को में रहे। वहाँ जो कुछ देखा सब-कुछ आश्चर्य-प्रद है। सत्तर लाख की जनसंख्या वाले इस विशाल नगर में मकानों की कमी है, लोगों को पर्याप्त कठिनाई होती है, परन्तु गन्दी बस्तियाँ नहीं हैं और हमारे देश की तरह लोग पटरियों पर भी डेरे डाले नहीं पड़े रहते। शहर के किनारे बड़ी-बड़ी सड़कें और गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ सौ दिन में बनकर तैयार हो जाती हैं। सुना गया है कि एक वर्ष में मकानों की समस्या सुलझ जायगी। मजदूरों के रहने के लिए जो इमारतें हैं उन्हें 'एपार्टमेण्ट हाउस' कहा जाता है। उनमें एक से लगाकर पाँच कमरों तक के फ्लैट हैं, जो स्टेट या ट्रेड यूनियन द्वारा पारिवारिक आवश्यकता के अनुसार मिलते हैं। मकानों का किराया, आमदनी के अनुसार लिया जाता है। मकानों के किराये बढ़ाने या पगड़ी लेकर ऊँचे किराये पर मकान देने की गुंजाइश यहाँ नहीं है।

यहाँ पर (नगरों में) भूमि और मकानों का मालिक राष्ट्र है या फिर मजदूर-यूनियन अथवा म्युनिस्पैलिटी है। गत युद्ध में मास्को इतना सुरक्षित रहा है कि जर्मनी के बम-वर्षक विमान बार-बार हमला करने आते थे, परन्तु उन्हें पीठ दिखाकर भागना पड़ता था। युद्ध-काल में भी पूरे जोर-शोर से निर्माण के सारे काम हो रहे थे। हमने कई अस्पताल, स्कूल, घर और सांस्कृतिक भवन देखे जो युद्ध के ही दिनों में बने हैं। इमारतों पर इमारतें बनती जा रही हैं, नगरों का विस्तार और सीमा बढ़ती जा रही है तथा शहर के आस-पास दो और उपनगर बन रहे हैं, इस पर भी लोग ठसाठस रह रहे हैं और किसी को शिकायत नहीं है।

मैं अपने एक पुराने मित्र के घर गया जो बुद्धिजीवी हैं; यह मित्र साढ़े-चार हजार रूबल प्रतिमास वेतन पाते हैं। सपत्नीक हैं तथा अब सन्तान भी हो गई है। इनके पास जो फ़्लैट है उसमें एक कमरा सोने को, एक बैठक, स्नानागार तथा भोजनालय है। बिजली आदि मिलाकर घर का किराया कुल तीस रूबल है। एक दिन एक रूसी महिला के साथ बात हुई, टाइपिस्ट हैं, अँगरेजी जानती हैं तथा दुभाषिये का भी काम करती हैं। एक मोटर मैकेनिक के साथ विवाह कर चुकी हैं। दोनों पति-पत्नी लगभग दो हजार आठ सौ रूबल प्रतिमास पैदा करते हैं। इनके पास भी एक कमरे वाला फ़्लैट है। मैंने उससे कहा—"आपको तो इस देश के नियमानुसार विवाह के बाद ही दो कमरों वाला फ़्लैट मिल सकता है।" वह युवती हँसकर बोली—"इसकी आवश्यकता नहीं जान पड़ती। बाल-बच्चे वालों को हमारी अपेक्षा दो कमरों की अधिक आवश्यकता है।" मैंने विनोद में कहा, "लेकिन पति-पत्नी में कभी मान-अभिमान तो होता ही है और एक कमरा हो तो गुस्सा होकर अलग रहने में सुविधा रहती है।" उसने सलज्ज भाव से कहा—"हम उसे ऐसे ही निपटा लेते हैं।" सोवियत शिक्षा-पद्धति के फल से ही यह स्वार्थ-बुद्धि-रहित सामाजिक चेतना जाग्रत हुई है। और भी अनेक बातों में मैंने देखा है कि रूसी तरुणों तथा तरुणियों की मनोवृत्ति हमारे-जैसी नहीं है। आत्म-परायणता और अनुदारता इनकी समाज-व्यवस्था से प्रायः दूर हो गई है।

मास्को शहर में दस-बारह विशाल संग्रहालय हैं। इनमें ऐतिहासिक, कला-सम्बन्धी, प्राचीन और आधुनिक काल की हाथ की बनी चीजें संग्रहीत हैं। वैज्ञानिकों द्वारा आविष्कृत वस्तुओं को, उनके क्रम-विकास के अनुसार, बहुत सुन्दर ढंग से सजाकर रखा गया है। यह देखते ही पता चल जाता है जो इन्होंने सामन्तशाही युग के राज-प्रासादों को शिक्षण-संस्थाओं के रूप में परिणत कर दिया। मास्को-पुनर्गठन-संग्रहालय अन्यतम है। मास्को शहर के गत आठ सौ वर्षों का इतिहास यहाँ चित्रों, नक्शों, मानचित्रों तथा अनेक प्रकार के मॉडलों में स्पष्ट किया गया है। समाजतांत्रिक काल में पुराना मास्को किस प्रकार बदला है और

किस प्रकार बदला जायगा, यह बड़ी-बड़ी इमारतों के नक्शों, विवरणों और नमूनों द्वारा समझाया गया है। वस्तुओं को नीचे केवल नाम लिखकर छोड़ नहीं दिया गया है। प्रत्येक स्थान पर सब विषयों की जानकारी कराने के लिए आदमी नियुक्त हैं। मैंने देखा, दर्शकों में अधिकांश स्कूलों और कालेजों के छात्र और छात्राएँ थीं। छात्र-छात्राएँ राजधानी के सम्बन्ध में सब-कुछ भली भाँति पूछ-ताछ रहे थे। भावी निर्माण की योजनाओं के बारे में समझ रहे थे। हमारे यहाँ के समान गुल-गपाड़ा नहीं था, जैसे कि कलकत्ता के चिड़ियाघर में देखा जाता है, भीड़-भड़क्का तो बहुत होता है परन्तु ऐसा नहीं देखा कि किसी में कुछ समझने की जिज्ञासा है।

यहाँ पर सोवियत रूस के लिए गर्व और गौरव की वस्तु 'मास्को मेट्रो' अथवा पृथ्वी के नीचे चलने वाली रेलवे-लाइन की पूरी योजना भी रखी गई है। बिजली के रंग-बिरंगे प्रकाश द्वारा हमें समझाया गया कि कितना काम हो चुका है, किस तरह हो रहा है, और कितना फैलेगा। बड़ी-बड़ी इमारतों को इच्छानुसार और अक्षत अवस्था में एक स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर रख देने वाली एक मशीन का माडल भी हमने देखा। इंजिनियरिंग विद्या में ये लोग किसी देश से भी पीछे नहीं हैं। मास्को-वोल्गा नहर, रेगिस्तानी प्रदेशों में सिंचाई-व्यवस्था, भूगर्भस्थ-रेल-पथ तथा बड़े-बड़े जल-विद्युत्-उत्पादन के बड़े-बड़े केन्द्र, रूस के तरुण इंजिनियरों की सृजन-शक्ति की सफलता का प्रमाण देते हैं। जो विस्तृत मार्ग 'रेड स्क्वायर' से निकलकर 'होटल नेश्नल' के पास होता हुआ पश्चिम की ओर जाता है उसका नाम गोर्की-स्ट्रीट है। नगर के अधिकारियों ने निश्चय किया कि मार्ग चौड़ा करना है और इसके लिए एक ओर के मकान गिरा दिये जायँ। इस पर आपत्ति उठाई गई कि यदि ऐसा किया गया तो कई ऐतिहासिक और पुरानी इमारतें नष्ट हो जायँगी। इंजीनियरों के परामर्श से मकानों को स्थानान्तरित करने का प्रबन्ध कर दिया गया। हमने सुना कि दस-दस बारह-बारह खण्ड की बड़ी-बड़ी इमारतें, बिजली, टेलीफोन और पानी के नल आदि का सम्बन्ध खण्डित किये बिना ही, मशीनों की सहायता से स्थानान्तरित की गई। यह केवल दो साल पहले की बात है। इस गोर्की-स्ट्रीट से हम कई बार आए और गए हैं। सड़क के दोनों ओर दस-बारह हाथ ऊँचे चिनार के वृक्षों की पंक्तियाँ हैं। दो साल में ही चिनार के वृक्ष इतने बड़े कैसे हो गए? हमें बताया गया कि जंगल से एक ही माप के वृक्ष उखाड़कर यहाँ लाए और लगाए गए हैं। यहाँ बगीचों और पेड़ों की रक्षा कितने यत्न से की जाती है? सड़क के किनारे पर लगे हुए वृक्षों के चारों ओर लोहे की मजबूत बाड़ लगा रखी है, जिससे आने-जाने वालों की ठोकरों से वृक्षों की जडों पर आघात न लगे।

मास्को में दिन-रात, चौबीसों घंटे लोगों का आवागमन जारी रहता है। सब चुस्त-दुरुस्त कपड़े पहने हैं। कोई भी दीन और मलीन नज़र नहीं आता। उन्हें देखने से ही पता चलता है कि ये सब काम-काजी लोग हैं। जीवन के संघर्ष की निष्ठुर माँग पूरी करने के लिए उन्मत्तों की भाँति साँस रोककर इन्हें दौड़ना नहीं पड़ता। स्त्रियों की पोशाकों से उनकी परिष्कृत अभिरुचि का तो बोध होता है, लेकिन विलासिता की पालिश नहीं है। रँगे हुए ओठों, मुँह बनी हुई भौहें और आधुनिक शृंगार के ऐसे ही बहुत खुले हुए रूप यहाँ कभी ही दीख पड़ते हैं। रूसी युवतियाँ सौन्दर्य की कृत्रिम चमक-दमक पसन्द नहीं करतीं। ये स्वास्थ्य के स्वाभाविक सौन्दर्य और लावण्य की शोभा तथा सुषमा से पूर्ण हैं। मार्ग में पुरुषों की कमर में हाथ डालकर और बदन से बदन मिलाकर नहीं चलतीं। ये प्रगल्भा नहीं हैं। आदर मे गद्‌गद् और पुरुषों के बाहु पर निर्भर होकर चलने वाली मरालगामिनी भी ये नहीं हैं। पश्चिमी यूरोप की भाँति रास्ते में, उद्यान में तथा अन्य खुले स्थानों पर चुम्बन और आलिंगन करना उनकी कल्पना में कभी नहीं आ सकता। एक दिन रूस में भारत के राजदूत श्री राधाकृष्णन् ने रूसी महिलाओं की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की। उन्होंने कहा--"इनका चरित्र यहाँ की शिक्षा-प्रणाली ने बदल दिया है। इनके चरित्र में कठोरता तो अवश्य है, परन्तु रूक्षता नहीं है। रूस की नारी पुरुषों के साथ-साथ समानाधिकार का उपभोग करती है। रूस में विलासिनियों का नाम-निशान तक भी नहीं। बड़े-बड़े भारी यन्त्रों का पुरुषों के साथ मिलकर संचालन करती हैं। बाज़ार, कारखाने, विद्यालय, अस्पताल तथा बड़े-बड़े आफिस तक महिलाओं द्वारा संचालित होते हैं। रूस की नारी अबला भी नहीं, दुर्बला भी नहीं,--स्नेह और ममता से भरपूर नारी है।"

लगातार कई दिनों तक आठ-दस घंटे रोज संग्रहालय, कारखाने तथा अन्यान्य विभिन्न संस्थाओं को घूम-फिरकर, देखते-देखते शरीर थक गया और एक दिन रात में ज्वर आ गया। प्रातःकाल होते ही एक महिला-डॉक्टर ने आकर दवा-दारू की सारी व्यवस्था कर दी। दोपहर में और एक महिला-डॉक्टर ने नाक, कान तथा गले की परीक्षा करके देखा। होटल की बूढ़ी सेविका औषधि पिलाती थी। वह माथे पर हाथ धरकर कहती कि घबराने की आवश्यकता नहीं, हम सब यहीं हैं। मैं हँसकर बोला कि इससे अधिक सेवा का यत्न तो हमारे यहाँ कभी न होता। सुना है कि यहाँ चालीस प्रतिशत महिला-डॉक्टर हैं। मेरे अकेलेपन को दूर करने के विचार से मेरी शैया के पास एक महिला आकर बैठ गई। नाम है कामरेड रूबी। अँगरेज़ी और जर्मन भाषा जानती है। उसने चीन में कई वर्ष बिताये हैं। चीनी कम्युनिस्टों की कई बातें रूबी ने सुनाईं। चीनी जनता

की ग़रीबी और युग-युग से चले आ रहे अभ्यासों की मूढ़ता किस प्रकार बदल रही है ये सारी बातें सुनाते-सुनाते उसने मुझ से पूछा—"आप लोग तो अब स्वतन्त्र हो गए हैं फिर क्यों नहीं इन बुराइयों को उखाड़ फेंकते ? हमारे यहाँ जो दुःख-दारिद्रय और कष्ट थे, उन्हें तो हम भुक्तभोगी ही जानते हैं। आज इस देश में आप जो कुछ देख रहे हैं इसकी तो हमने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी।" रूबी की बात का मैं कुछ सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सका। भूख, निरक्षरता तथा अन्यान्य बुराइयों को दूर करने की क्षमता का अभाव हमारा स्वभाव बन गया है। जड़ प्रथाओं की दासता करते-करते 'भाग्य' और 'दैव' ये ही हमारे अवलम्ब बन गए हैं। किसी दूसरे के हाथ की कठपुतली-मात्र बनकर रह गए हैं हम। भला इस विदेशी महिला को ये सब बातें किस प्रकार समझाता। डेढ़-दो सौ वर्षों की गुलामी में अँगरेजों ने हमारा हर प्रकार से शोषण किया और हम कंगाल हो गए। अँगरेजों ने हममें पारस्परिक विद्वेष और कलह फैलाकर पंगु बना डाला। अँगरेज चले तो गए, परन्तु जिस कुव्यवस्था को वे यहाँ छोड़ गए हैं उसे हम बदल नहीं सके, बदलने का साहस भी नहीं कर सके। स्वतन्त्रता का सुख जैसे हमारे भाग्य में ही नहीं बदा है। मैंने रूबी से कहा—"रूस में क्रान्ति के बाद लेनिन और स्टालिन के नेतृत्व को मानकर तुमने पुराने बन्धन तोड़ डाले हैं। इसीलिए तुम्हारे समाज के प्रत्येक स्तर में मुक्त-पवन प्रवाहित हो रहा है।" रूबी सँभलकर बोली—"प्रत्येक स्तर से आपका अभिप्राय क्या है ? हमारे समाज में श्रेणियाँ नहीं हैं। श्रेणी-भेद का तो हमने नाम ही मिटा दिया है। हमारी समाज तांत्रिक व्यवस्था में किसी खास सुविधा-भोगी के अस्तित्व की कल्पना ही सम्भव नहीं। परिणामस्वरूप हमारे समाज में ज्ञान, विद्या तथा ऐश्वर्य आदि किसी एक ही दायरे में संचित न होकर सबकी सम्पदा बन गए हैं। किन्हीं खास गुणों और विशेषताओं का संचार कुल तथा वंश-परम्परागत रूपेण होता है—हमारे समाज को देखकर तुरन्त समझा जा सकता है कि यह सिद्धान्त बिलकुल मिथ्या है।"

"मनुष्य-मात्र को समानाधिकार देने के नाम पर यहाँ एक विशेष ढंग के मनुष्य का निर्माण करने की जबरदस्ती की जाती है, यह मैंने अपने देश में सुना है" रूबी से मैंने कहा। रूबी ने हँसकर कहा—"पूंजीवादी देशों के बुर्जुआ टाइप के लोग बहुत समय से ऐसा ही कहते आए हैं। ऐसे लोगों की दृष्टि में समाजवाद व्यक्ति के विकास को रोकता है, व्यक्तिगत प्रयत्नों को निरुत्साहित करता है और प्रत्येक व्यक्ति को मशीन में बने हुए माल की तरह एक ही साँचे में ढाल देता है। यदि ऐसा होता तो युद्ध-काल में रूस के युवक-युवतियों में इतना साहस, प्रत्युत्पन्न-मतित्व और अन्तःशक्ति की प्रेरणा से काम करने का उत्साह देश की रक्षा के लिए कहाँ से पैदा हो गया ? आप यदि भली भाँति देखेंगे तो पता चलेगा कि

सोवियत की युवा-शक्ति आविष्कारक, शिक्षक, वैज्ञानिक, इंजिनियर, राज, शिल्पी, अभिनेता और संगीतज्ञ आदि के रूप में साम्यवादी समाज का संगठन करने के लिए बढ़ी चली आ रही है। ये सब क्या मशीन से बने हुए एक ही साँचे के मनुष्य हैं ?"

रूबी के साथ उस दिन वार्तालाप करने के बाद जो कुछ हमने देखा-सुना है, उससे ज्ञात होता है कि कजाकों की मार से खोए हुए पौरुष वाले और धर्म के मोह से लिपटे तथा रूढ़ियों के कारण पंगु बने हुए मनुष्य को गतिशील करने के लिए बॉल्शेविकों को पहले-पहल शायद कुछ जबरदस्ती करनी पड़ी है, एवं पूँजीवादी श्रेणी को नष्ट करने की कठोरता भी यहाँ रही है। बहुत दिनों की बेकार पड़ी हुई भूमि से उपज प्राप्त करने के लिए उस पर उगी हुई घास को नष्ट करना ही पड़ता है। बॉल्शेविकों ने तेज और गहरा हल चलाकर पुरानी विधि-व्यवस्थाओं की जड़ें तक उखाड़ डाली थीं, परन्तु यह कहना इनके साथ अन्याय होगा कि वह अवस्था अब तक वर्तमान है। शासन की जबरदस्ती वहीं चलती है जहाँ अधिकांश जनता अज्ञान के अन्धकार में पड़ी रहती है और मुट्ठी-भर सुविधा-भोगियों की ग़ुलामी करना ही भाग्य मान लेती है। जहाँ शिक्षा का प्रचार इतने प्रबल रूप में हो रहा है, सभ्यता के ज्ञान-भण्डार का द्वार जहाँ सबके लिए खोल दिया गया है वहाँ जोर और जबरदस्ती को संयत होना ही पड़ता है।

रूस में पुलिस के आतंक की विभीषिकापूर्ण कहानियाँ बहुत सुनी हैं। खुफिया पुलिस द्वारा किये गए अत्याचारों के वर्णन भी कानों तक पहुँचे हैं। यह भी सुना ही है कि भय और आतंक से देश-भर की जनता को दबाए रखने का पक्का प्रबन्ध यहाँ किया गया है, किन्तु कठिनाई यह है कि ये सब चीजें आँखों से नहीं दीख पड़तीं। अपने बंगाल प्रान्त में बचपन से ही पुलिस का जुल्म और उत्पीड़न देखता आ रहा हूँ। पुलिस के ज़हरीले डंक से न जाने कितने तरुणों के जीवन-पुष्प झड़ गए हैं। राज-द्रोह के अपराध में कारावास की सजा एक साधारण-सी घटना बन गई थी। कितने ही युवकों को केवल इसी सन्देह में कि ये क्रान्तिकारियों से सहानुभूति रखते हैं, खुफिया पुलिस की रिपोर्ट पर बिना विचार किये जेल में ठूँस दिया गया—कितने ही व्यक्तियों ने काले पानी में वर्ष पर वर्ष आकाश के तारे गिनते-गिनते काट दिए। अँगरेजी राज्य की वही पुलिस-व्यवस्था आज भी ज्यों-की-त्यों स्थिर है। स्वतन्त्र भारत में भी ऐसे दृष्टांत मिल जाते हैं कि कोई विशेष राजनीतिक विचार-धारा रखने के कारण लोगों को खुफिया पुलिस की रिपोर्ट पर सरकारी नौकरी नहीं मिली या वे नौकरी से निकाल दिये गए। राष्ट्र स्वतन्त्र हो गया है, परन्तु शासक-वर्ग ने पुराना 'पुलिसी' दृष्टिकोण नहीं छोड़ा। अभी उस दिन की बात है कि स्वाधीनता-आन्दोलन का दमन करने वाली पुलिस की

निष्ठुरता पर प्रकाश डालने वाले एक चित्रपट को अधिकारियों ने लम्बे अर्से तक प्रदर्शित करने की स्वीकृति नहीं दी थी। उनकी दलील यह थी कि चित्रपट से जनता के मन में पुलिस के प्रति घृणा फैलेगी। ब्रिटिश काल की पुलिस के आचरणों को प्रकट करने के सम्बन्ध में भी सेंसर की सतर्कता बरती जाती है। दूसरी ओर सोवियत रूस में ऐसे कितने ही चित्रपट हमने देखे हैं, जिनमें जारकालीन पुलिस की वीभत्स निष्ठुरता को नंगे रूप में प्रदर्शित किया गया है। उस दिन मास्को के एक सर्कस में दर्शक तब हँसी से लोट-पोट हो गए जब एक प्रहसन में कुछ बच्चों ने पुलिस के दो कांस्टेबिलों की नाक में दम कर दिया। संग्रहालयों में भी पुलिस के अत्याचारों के चित्र हमने देखे हैं, क्रान्तिकारियों के साथ जारकालीन पुलिस द्वारा किये गए बर्बर व्यवहारों के चित्र पर्दे पर ही नहीं, रंगमंच पर भी हमारे सामने आए हैं। पुलिस के निष्ठुर शासन की धारा यदि आज भी वैसी ही है तो उसके प्रति जनता के मन में घृणा फैलाने का काम सोवियत सरकार की दूरदर्शिता का परिचय नहीं देता। हमारे अँगरेज शासक तो ऐसी भूल कभी करते ही न थे, हमारे देसी शासक भी ऐसी ग़लती करने के लिए प्रस्तुत नहीं हैं!

तीन

हमारा कार्य-क्रम प्रतिदिन मोटर द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाना और संग्रहालय, लायब्रेरी, स्कूल, कालिज तथा विभिन्न संस्थाएँ देखना है। सुबह दस बजे के बाद परिभ्रमण शुरू होता है। सायंकाल भोजनोपरान्त अभिनय, गीति-नाट्य और नृत्य देखने के लिए जाते हैं। रात को बारह बजे रात्रि का भोजन करने के बाद शयन होता है। पहली जुलाई को नाट्य-शालाएँ बन्द हो जायँगी। नाटक पार्टियों के अभिनेता और अभिनेत्रियाँ ग्रीष्मावकाश बिताने अथवा अन्य प्रान्तों में नाटक प्रदर्शन करने जायँगे। हमने बोल्शेविक थियेटर, मास्को आर्ट थियेटर, माली-थियेटर, चेकोबेस्की म्यूजियम हॉल आदि की नाट्य-शालाओं में नृत्य, गीत और अभिनय देखे हैं। अकेले मास्को में ही लगभग पच्चीस-तीस नाट्य-शालाएँ हैं। इन नाट्य-शालाओं के भवन बहुत विस्तृत, चार-पाँच खण्ड ऊँची और अर्द्ध-चन्द्राकार गैलरियों में दर्शकों के बैठने के लिए आरामदेह कुर्सियाँ हैं। दीवारों पर हाथ से की गई स्वर्ण-रंजित चित्रकारियाँ तथा बेशकीमती पर्दे हैं। यह सारी सम्पत्ति किसी व्यक्ति की नहीं, बल्कि राष्ट्र की है।

पहले जमाने में ये नाट्य-शालाएँ कुलीन वर्ग तथा बड़े-बड़े सामन्तों की विलास और व्यसन की सामग्रियाँ थीं, परन्तु आज उनके द्वार किसानों तथा मजदूरों के लिए उन्मुक्त हैं। अभिनय-संगीत और विशेषतया बाल-नृत्य व अपेरा, इनमें रूस ने विश्व के समस्त देशों को पीछे छोड़ दिया है। संगीत के सम्बन्ध में मेरी शुरू से जानकारी शून्य ही है, अतएव अनधिकार चर्चा नहीं करूँगा। भाषा न जानने के कारण अभिनय का पूरा आनन्द लेने से भी वंचित रहना पड़ा है। यूक्रेन का लोक-नृत्य देखकर मैं अत्यन्त मुग्ध हो गया। बालशेई थियेटर में एक सन्ध्या को आँखों के सामने एक स्वप्न-लोक की रचना हो गई थी। उस समय विख्यात नर्तकी चिखाविरनोव, अपने दल-बल के साथ 'स्वानलेक' नामक अपेरा दिखा रही थी।

अपनी तरुणावस्था में मैंने कलकत्ता में आनापावलोवा का 'राजहंस-नृत्य' देखा है। नृत्य-शास्त्र का मुझे ऐसा कोई ज्ञान नहीं है कि मैं दोनों की तुलना करूँ। पचास रूपवती नर्तकियों के मध्य चिखाविरनोव अपनी लचकीली देह की विचित्र भाव-भंगिमा और लीला-चंचल पगों की क्षिप्र गति से जब नृत्य कर रही थी तो तीन हजार दर्शक मंत्र-मुग्ध होकर देख रहे थे। उसने अपनी नृत्य-कला की स्वाभाविक निपुणता से प्रणय-वेदना-विह्वल भाव-लोक की सृष्टि कर दी जिसके माधुर्य-रस में मैं अभिभूत हो गया। वह मूर्ख और इन्द्रिय-परायण धनिकों का

मनोरंजन करने वाली नटियों का चपल नृत्य नहीं था, मनुष्य की नीच प्रवृत्तियों को उत्तेजित करने के लिए विशेष अंगों का स्थूल संचालन भी वहाँ नहीं था, उसमें तो देहातीत आनन्दमय सत्ता का प्रकाश हो रहा था। अभिनय में बृटेन के 'रेड डीन' डॉ० इलियट जान्सन भी मौजूद थे। यवनिका-पतन के बाद उन्होंने हमारे 'बाक्स' में आकर भारतीय प्रतिनिधियों से उल्लास-पूर्वक हाथ मिलाया। उनके केश श्वेत थे, मूर्ति सौम्य थी और श्रद्धा उन्हें देखते ही हो जाती है।

रूसी दर्शक प्रसन्नता व्यक्त करने और नट-नटियों का अभिनन्दन करने के लिए बार-बार दीर्घ करतल-ध्वनि करते हैं। पर्दा गिरते ही करतल-ध्वनि क्रमशः तीव्र होने लगती है। जिस या जिनके उद्देश्य से तालियाँ बजती हैं वे पर्दा खिसकाकर दर्शकों के सामने उपस्थित हो जाती हैं। उनके अन्दर जाते ही फिर दुगुने जोर से करतल-ध्वनि होने लगती है। इस प्रकार कम-से-कम तीन-चार बार अभिनेता और अभिनेत्रियाँ गुण-मुग्ध दर्शकों को दर्शन देती हैं। मैं तो पर्दा गिरते ही कानों में उँगली दे लेता हूँ। पास बैठे हुए दर्शक आश्चर्य से मेरी ओर देखते हैं। आनन्द-विभोर दर्शकों की ऐसी घनघोर करतल-ध्वनि का माधुर्य उपभोग करने की क्षमता मुझमें नहीं है। निश्चित रूप में यह सीमोल्लंघन है, परन्तु इस देश में शिल्पियों, लेखकों, कवियों और कलाकारों के प्रति जो सम्मान तथा अनुराग जन-साधारण में देखा जाता है, उसकी अपने देश के अस्सी प्रतिशत अशिक्षितों और शिक्षाभिमानी कुशिक्षितों से आशा भी नहीं की जा सकती। इनके अभिनय, संगीत, तथा नृत्य-कला की पीठ पर राष्ट्रीय सहायता है। राष्ट्रीय नाट्य-शाला तो हमारे देश में आज भी कल्पना की बात है। कलकत्ता में किसी समय प्राइवेट नाट्य-शालाओं का काफी सम्मान था, लेकिन सिनेमा की चटक-मटक ने उन नाट्य-शालाओं को ठप्प कर दिया है। अन्य शहरों में भी यही हाल है, राजधानी दिल्ली तक में नाट्य-शाला नहीं है। रूस के सिनेमाओं तथा नाट्य-शालाओं में कामुकता भड़काने वाले अभिनय नहीं होते। अभिनेत्रियों के अंग विशेष को जरा-सा खोलकर या उभारकर लोभियों को उद्भ्रान्त कर देने वाली कला भी यहाँ नहीं दिखाई जाती। और ऐसा क्यों न हो जब कि सिनेमा और नाट्यशालाओं को ये लोग शिक्षा का आधार मानते हैं। जनता की रुचि परिष्कृत रहे, इस ओर पूरी सावधानी रखी जाती है। हमारे देश में हालीवुड की नकल पर अधःपतन की ओर ले जाने वाली जो फिल्में बन रही हैं उनके सम्बन्ध में विलाप करना भी निष्फल है। मैंने राष्ट्रीय सहायता की बात कही है, लेकिन यहाँ के सिनेमाओं और नाटकों पर राष्ट्र या कम्युनिस्ट-पार्टी की सहानुभूति होती है उनका नियंत्रण नहीं। फिल्मों और रंगमंच के लिए कहानियों और नाटकों

के निर्वाचन का उत्तरदायित्व लेखकों और कलाकारों पर है । इनके संगठन द्वारा स्वीकृत होने के बाद ही फिल्मों और नाटकों को जनता के सामने प्रदर्शित किया जाता है । जनता पैसे देकर देखती है और जो आय होती है उससे कलाकारों को पारिश्रमिक दिया जाता है तथा निर्माण-कार्य होता है ।

मास्को का सरकारी 'शिशु-साहित्य-सदन', किन्तु शिशु-साहित्य कहने से शायद भ्रांति की संभावना है । पाँच से लेकर तेरह वर्ष तक के स्कूल में पढ़ने वाले छात्र और छात्राओं के लिए चित्र, उपन्यास, कहानियाँ, इतिहास, भूगोल और विज्ञान आदि विभिन्न विषयों की सुन्दर-सुन्दर पुस्तकें यहाँ से प्रकाशित होती हैं । पुस्तकों का चुनाव 'शिशु-साहित्यिक संघ' करता है । पुस्तकें रूसी भाषा में मौलिक भी लिखी जाती है और विश्व की समस्त भाषाओं की उत्कृष्ट रचनाओं का अनुवाद भी किया जाता है । संस्कृत भाषा के 'कथासरित्सागर', 'दशकुमार चरित', और विष्णु शर्मा के 'पंचतंत्र' आदि का अनुवाद भी यहाँ देखने को मिला । लेकिन भारत में प्रचलित भाषाओं के अनुवाद वहुत कम देखने को मिले । फ्रांसीसी, जर्मन तथा अँगरेजी भाषाओं के अनुवाद अधिक हैं । प्रवेश-द्वार के अगल-बगल वाचनालय है । एक में पाँच-छै साल के लड़के-लड़कियाँ पढ़ रही हैं । दूसरे में चौदह-पन्द्रह साल के लड़के-लड़कियाँ रंगीन और सचित्र पुस्तकें देख रही थीं । दीवारों पर सुप्रसिद्ध साहित्यिकों के चित्र लगे हैं—दोनों ओर आल्मारियों में पुस्तकें सजी हैं । पाठकों की सहायता करने वाली परिदर्शिकाएँ हैं । यहाँ काम करने वाली सब महिलाएँ ही हैं । पढ़ने और वैठने की सुन्दर व्यवस्था है ।

पढ़ने वाले बालक हमें देखकर चकित हो उठे । हमने आगे बढ़कर देखा, एक लड़की विक्टर ह्यूगो की 'नाइण्टी थ्री' पढ़ रही है और एक लड़की विश्व-इतिहास । लड़की ने इतिहास में भारत का अध्याय निकालकर हमें दिखाया । इसे यह भी पता है कि अब भारत का विभाजन हो गया और पाकिस्तान बन गया है । हम लोग सबके साथ घुल-मिलकर बातचीत करने लगे । एक मोटर-ड्राइवर की लड़की ने पूछा—"आपके देश में किशोर-आन्दोलन ओर किशोर-संघ हैं ?" उत्तर दिया—"कहीं-कहीं इस प्रकार के संघ और समितियाँ हैं ।" उसने पुनः जिज्ञासा की—"आपके देश में किशोर ओर किशोरियाँ इतिहास और विज्ञान पर चर्चा करते हैं या नहीं ? देश का भौगोलिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए टोलियाँ बनाकर घूमने जाते हैं या नहीं ?" मैंने कहा—"हमारे यहाँ के बालक-बालिकाओं को इस प्रकार की सुविधा नहीं के बराबर है ।" एक छोटी सी लड़की ने हठात् प्रश्न किया—"कोरिया के युद्ध के बारे में आपकी क्या राय है ?" मैंने जवाब दिया—"हमारे देश की जनता युद्ध से घृणा करती है । अमेरिका के इस अत्याचार में हमारी सहानुभूति कोरिया-वासियों के साथ है ।"

उसने उत्साहित होकर फिर पूछा—"आपके देश में शांति-आन्दोलन है ?" मैंने कहा—"हाँ, निश्चय ही शांति-आन्दोलन है।" मेरी बात सुनकर वह झटपट बाहर गई और चीनी मिट्टी का एक खिलौना लाकर हमें दे दिया। उसने फिर आग्रह-पूर्वक कहा—"आप अपने देश के किशोर और किशोरियों को हमारी ओर से अभिनन्दन देना तथा कहना कि हम भी युद्ध-विरोधी शांति-आन्दोलन में आप सबके साथ हैं।"

'शिशु-साहित्य-सदन' में अनेक विभाग हैं। एक बड़ा भारी हॉल है, इसमें महीने में दो बार ख्याति-प्राप्त बाल-साहित्य के विद्वान् भाषण देते हैं और देश-विदेश की बाल-शिक्षा-सम्बन्धी बातें सुनाते हैं। हम लोग आगे बढ़े तो देखा, एक कमरे में पन्द्रह-बीस युवतियाँ बाल-साहित्य पर अनुसन्धान कर रही हैं। ये सब ग्रेजुएट हैं, जो साहित्य-सम्बन्धी निबन्ध लिखकर डिप्लोमा प्राप्त करने के बाद शिक्षिकाएँ या लायब्रेरियन होंगी। शिक्षा, स्वास्थ्य, शिशु-पालन तथा समाज-सेवा आदि में यहाँ महिलाओं का ही प्राधान्य है। बच्चों को प्रत्येक संभव यत्न करके पूर्ण रूप से एक सफल मानव बनाने का काम इन लोगों ने व्रत की भाँति ग्रहण किया है। बच्चों की समस्त संस्थाओं में कामरेड स्तालिन के ये शब्द लिखे मिलते हैं—"बालकों की अवनति राष्ट्र की अवनति है।" एक शिशु की भी अवहेलना नहीं की जा सकती। छोटे बच्चों की मानसिक उन्नति के लिए साल में पचास-साठ लाख पुस्तकें यहाँ से विभिन्न केन्द्रों में पढ़ने के लिए पहुँचाई जाती हैं। सदन की चलती-फिरती लायब्रेरियाँ भी हैं। हमने सदन के अध्यक्ष से प्रश्न किया कि रूस के बच्चे किस विषय की पुस्तकें पसन्द करते हैं ? उत्तर में उन्होंने बताया कि कहानियाँ, जीव-जन्तुओं की क्रियाओं और भ्रमण-सम्बन्धी वार्ताओं के बाद बच्चे विज्ञान-सम्बन्धी पुस्तकें अधिक पसन्द करते हैं। डकैतियों के किस्से, जासूसी कहानियाँ तथा चोरों और खूनियों की करामातें बच्चों के हाथों में न जाने पायँ—इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता है।

जब हम मास्को में थे तो स्कूलों और कालिजों में गर्मियों की छुट्टियाँ थीं। इस समय नगरों के छात्र-छात्राएँ टोलियाँ बनाकर गाँवों में और स्वास्थ्य-निवासों में चले जाते हैं। साइबेरिया, काकेशस, कृष्णसागर के तट पर सब जगह छोटे छात्र-छात्राओं के लिए 'पायोनियर्स कैम्प' और 'सैनिटोरियम' बने हुए हैं। इसी प्रकार गाँवों के लड़के और लड़कियाँ शहरों में आ जाते हैं। स्कूलों और कालिजों की खाली इमारतों में इनके रहने तथा खान-पानादि की सुन्दर व्यवस्था रहती है। इस प्रकार इनकी शिक्षा का क्रम तो चलता ही है, विशाल देश के साथ परिचय भी घनिष्ठ हो जाता है। इस अनुष्ठान में सरकार और विभिन्न श्रमिक-संघों द्वारा प्रचुर धन व्यय किया जाता है। कृष्ण सागर के तट पर सुकुमी में हमने येलो रूस

और यूक्रेन के बच्चों को आनन्द के साथ समुद्र में स्नान करते देखा है। लेनिनग्राद के 'पायोनियर्स कैम्प' या 'किशोर-महल' में देखा है कि दूर-दूर के छात्र-छात्राएँ आई हैं। यह किसी जमाने में बादशाह जार का विशाल राज-प्रासाद था। इसमें दो सौ सजे सजाये कमरे हैं। अब यह प्रासाद लड़कों और लड़कियों के लिए'आनन्द-निकेतन' में परिणत हो चुका है। जब हम गये तो दो सौ बालक और बालिकाएँ बाग में बाजे के साथ ताल दे-देकर नाचने-गाने में मस्त थे। बाग में वृक्षों के नीचे छोटे-छोटे झुण्ड बनाकर अनेक प्रकार के खेल खेल रहे हैं। इस प्रासाद में सिनेमा, थियेटर, लायब्रेरी, पदार्थ-विद्या, रसायन तथा प्राणी-विज्ञान-सम्बन्धी अनेक विभाग हैं। जार के समय जिन सुरम्य कमरों में कुलीना सुन्दरियाँ नृत्य-लास्य मे मद-मत्त हो जाती थीं, उनमें अब किसानों और मजदूरों के बच्चे शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। ज्योतिर्विज्ञान-विभाग देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। प्रकाश बुझाते ही——ऊपर आकाश में सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी और ग्रह अगणित नक्षत्रों के बीच में आवर्तित होते दीख पड़ने लगे। नक्षत्रों की गति तथा उनकी दूरी आदि का इस तरह ज्ञान कराया जाता है। इसे यदि एक छोटा-मोटा विश्वविद्यालय कहें तो अत्युक्ति न होगी। इस प्रकार की शिक्षा-संस्थाएँ सारे रूस में बनी हुई हैं——आने वाले युग के स्वस्थ और सबल मानव के निर्माण के लिए।

पच्चीस जून सोमवार। सोमवार के दिन यहाँ छुट्टी रहती है। मैंने खिड़की से बाहर नजर डाली तो देखा, स्त्रियाँ थैलियों में रोटी-शाक, मांस-मच्छी आदि लेकर चली जा रही हैं। सोमवार को अन्य सब दुकानें बन्द होने पर भी खाने-पीने की दुकानें खुली रहती हैं। कारण यही है कि इस दिन भीड़ अधिक होती है। एक दुकान पर पहुँचकर देखा तो चीनी लेने के लिए एक लम्बा 'क्यू' लगा हुआ था। जहाँ राशन-प्रणाली नहीं वहाँ इतनी भीड़ क्यों? पता चला कि यह 'ट्राबरी' का मौसम है। स्त्रियाँ इन्हीं दिनों में वर्ष भर के लिए 'जामजेली' बनाकर रख लेती हैं। इसलिए चीनी की माँग बढ़ गई है। सुना था कि इस देश में गृहस्थी नाम की कोई भी चीज नहीं, सब लोगों को सरकारी लंगर में बना हुआ भोजन खाना पड़ता है और व्यक्तिगत रुचि का कोई मूल्य नहीं। लेकिन यहाँ देखा कि स्त्रियाँ मिलों, कारखानों और अस्पतालों आदि में काम करती हैं तथा पति व बाल-बच्चों के साथ गृहस्थी भी चलाती हैं। खरीद-फरोख्त का सारा काम प्रायः गृहिणियाँ ही करती हैं। कई दुकानों में घुसकर देखा, शाक-सब्जियाँ हमारे देश जैसी ही हैं। आलू, प्याज, फूल गोभी, बन्द गोभी, टमाटर और मटर यहाँ तक कि बैंगन और लौकी कुम्हड़े तक भी रखे हैं। इनके अतिरिक्त अंगूर, सेब, केला, अनार, और स्ट्राबरी आदि फल भी हैं। अवश्य ही फलों की प्रचुरता जार्जिया और उजबेकिस्तान में देखने को मिली है। मास्को में फल बाहर से ही आते हैं। दूकानों पर इन लोगों की

खरीद देखकर यही मालूम होता है कि ये सब खाते-पीते लोग है।——कंगाल इस देश में कोई भी नहीं रह गया।

मास्को एवं अन्यत्र प्रायः सभी स्थानों पर देखा गया, ठेलागाड़ियों पर रास्ते के दोनों ओर शर्बत तथा आइस क्रीम की दुकानें लगी हैं। छोटे-बड़े सभी आइस क्रीम या 'मारोजना' खाते हुए चले जा रहे हैं। इसका मूल्य भी कम नहीं होता। पचहत्तर कोपक से डेढ़ रूबल तक। यह बात जो मन में आई तो इसका एक विशेष कारण है। रूस से वापस आते हुए हम रोम उतरे। वहाँ से अँगरेजी में अमेरिकनों की ओर से एक समाचार-पत्र निकलता है——'रोम अमेरिकन'। एक दिन उस पत्र में पढ़ा——"बर्लिन के युवकोत्सव में भाग लेने के लिए आए हुए लगभग डेढ़ हजार रूसी नौजवान और युवतियाँ, पुलिस का घेरा तोड़कर एंग्लो-अमरीकी सीमा में प्रवेश कर गए। वे वहाँ पेटुओं की तरह आइस क्रीम पर टूट पड़े। इसका कारण यह है कि अपने जीवन में उन्हें आइस क्रीम खाने को कभी नहीं मिली।" इस प्रकार की गप्पें रूस के बारे में आज भी उड़ाई जाती हैं और उन पर विश्वास करने वालों का अभाव भी नहीं है। परन्तु वास्तविकता यह है कि रूस में खाने की चीजें बड़ी मात्रा में और बहुत सस्ती मिलती हैं। रूस में वनस्पति घी बिलकुल नहीं मिलता। कोई भी नकली चिकना पदार्थ बनाना या बेचना कानूनन जुर्म है।

हमें अपनी टोली में दुभाषिए को साथ लेकर पुस्तकालय, संग्रहालय तथा कारखाने आदि देखने की सुविधा है। इसके अतिरिक्त थोड़े समय में बहुत सी चीजें देखना ही कठिन हो जाता। मोटर के मार्ग में दोनों ओर जो देखता हूँ तो उसका परिचय किसी रूसी के साथ न होने से अज्ञात ही रह जाता है, फिर भी मास्को की सड़कों पर कभी-कभी मैं अकेला ही चल पड़ता हूँ। यों हमारे दल के भ्रमण का कार्यक्रम दस बजे जल-पान करने के बाद शुरू होता है। प्रातःकाल का काफी समय बच जाता है, इसमें अवसर मिलते ही तीन-चार मील का चक्कर लगा आता हूँ। खुली हुई दुकानें और इधर-उधर फिरते हुए लोगों को देखता हूँ। बातचीत करने की सुविधा अवश्य नहीं मिलती। लेकिन आँखों से देख लेने से भी कम शिक्षा नहीं मिलती। मैंने देखा, सफाई करनेवाली हाथों में एक लम्बा झाड़ू लेकर सड़क साफ कर रही है। उसके पैरों में सिल्क के मौजे और सुन्दर जूते हैं, बदन पर रंगीन छींट के कपड़े हैं, हाथ में खूबसूरत घड़ी बँधी हुई है और घुटने तक एक सफेद कपड़े का आवरण बँधा हुआ है जिससे धूल से बचाव हो सके। सिर के बाल रूमाल से बँधे हैं। बढ़िया स्वास्थ्य है और मुख पर विरक्ति का लेश-मात्र भी नहीं दीख पड़ता। आँखों के सामने कलकत्ता की मेहतरानियाँ घूमने लगीं। जिनके रूप-रंग का वर्णन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। 'पोर्टर' ठेले पर दूध या दही की बोतलें और बरफ लिये जा रहा है। भारत में ऐसे लोग प्रायः चिथड़े लपेटे रहते हैं, परन्तु

इसने नीले रंग का साफ-सुथरा कोट और पतलून पहन रखा है। सड़क पर कभी कोई भीख के लिए हाथ फैलाता हुआ नहीं मिला। चौड़ी सड़कें छोड़कर गलियों में भी गया हूँ, परन्तु नंगे, दुर्बल और धूलि-धूसरित बच्चे नहीं दीख पड़े। मैं नहीं कहता कि मास्को के सभी नागरिक धनी और खाते-पीते लोग हैं—परन्तु यह तो कहना ही पड़ेगा कि अपने देश के कंगालों, दरिद्रों—दूसरों की जूठन पर जीने वालों तथा पशुओं के मुँह से ग्रास छीन लेने वालों की तुलना में, यहाँ के लोगों ने जीवन-निर्वाह के असम्मान और हीनता-दीनता से मुक्ति पा ली है।

रोम की सड़क पर धोती-कुर्ता पहनकर क्या निकला था, अपने लिए विपत्ति बुला ली थी, लड़कों की सीटियों और खिल्लियों की चोट से घायल होकर होटल वापस लौटा और फिर फिरंगी बनकर प्राण बचाने पड़े थे। परन्तु मास्को, स्तालिनग्राद और तासकन्द में धोती-कुर्ता पहने देखकर बच्चों तथा बूढ़ों ने मुझे विदेशी समझा और सम्मान किया है। कई जातियों के निवास-स्थान सोवियत में, जाति और वर्ण-विद्वेष बिलकुल समाप्त हो गया है। इसका कारण यह है कि सोवियत सरकार ने सर्वसाधारण के लिए देश-भ्रमण करने की पूर्ण व्यवस्था कर दी है। यूरोप से एशिया तक फैला हुआ लम्बा-चौड़ा इनका देश है, बहु भाषा-भाषी और विचित्र जातियों वाले लोग इसके निवासी हैं। अपने विशाल भारत में कुछ तीर्थ-यात्रियों एवं शौकीन सैलानियों के अतिरिक्त ऐसी विचित्र मानव-मण्डली के दर्शन किसने किये हैं। हमारे अपने तथा अन्यान्य देशों में भी भ्रमण ऐसा व्यय-साध्य कार्य है कि धनी लोग ही इसका आनन्द ले सकते हैं, सोवियत रूस की स्थिति ठीक इसके विपरीत है। साधारण रूसी नियम के अनुसार किसान, श्रमिक, बुद्धिजीवी नर-नारियाँ टोलियाँ बनाकर सरकारी खर्च और प्रबन्ध पर इस कोने से उस कोने तक यात्रा करते हैं। विभिन्न रिपब्लिकों द्वारा भ्रमण को उत्साहित करने एवं उसके लिए सुविधाएँ देने के फलस्वरूप अपरिचय का संकोच लुप्त हो गया है। इसीलिए ये लोग भारतीय वेश-भूषा वाले को देखकर चौंकते नहीं, बल्कि उसे अपना आत्मीय ही मानते हैं। मास्को की सड़कों पर भारतीय वेश-भूषा में घूमते समय कई मेडेल वाले फौजी कर्मचारियों ने भी अकस्मात् अभिवादन करके हमें अप्रस्तुत कर दिया है। इन लोगों ने श्रेणी-भेद ही नहीं मिटाया जाति-भेद और वर्ण-भेद को भी लुप्त कर दिया है।

चार

हमने एक 'पायोनिर्म कैम्प' देखने का आग्रह प्रकट किया तो कुशल-कर्मा कामरेड अकराना ने तुरन्त सारी व्यवस्था कर दी। लड़कों के लालन-पालन और शिक्षा-प्रणाली के सम्बन्ध में, इस देश में कई प्रकार की परीक्षाएँ और गवेषणाएँ हो रही हैं। इस परीक्षा और गवेषणा के वर्णन पुस्तकों में पढ़े हैं, परन्तु आँखों से यह देखना दूसरी बात है कि मनुष्य के मन और चरित्र में शिक्षा किस प्रकार साकार हो गई है। मास्को से हम लोग मोटर द्वारा रवाना हुए। साठ मील का मार्ग है। चौड़ी और तारकोल वाली चिकनी सड़क है। शहर समाप्त होते ही गाँव शुरू हो गए। सड़क के दोनों ओर बगीचों से घिरे हुए पुराने ढंग के मकान हैं। कहीं-कहीं आधुनिक शैली के दुमंज़िले बंगले दीख पड़ते हैं। सब्ज़ी के बागों की हरियाली और अविच्छिन्न शस्य-क्षेत्रों में, वायु से हिलती हुई गेहूँ तथा राई की बालियाँ बड़ी सुहावनी लग रही हैं। कहीं-कहीं आलू के खेत भी हैं। बीच-बीच में बार्च और पाईन के जंगल भी मिल जाते हैं। यहाँ की भूमि भारत की भाँति छोटे टुकड़ों में बँटी हुई नहीं है। दूर दिगन्त की श्यामल वन-रेखा तक फैले हुए शस्य-क्षेत्र देखकर अपना देश याद आ गया। थोड़ी देर में बड़ी सड़क छोड़कर एक कच्ची सड़क पर पहुँचे। मोटर गाँव के भीतर मोड़ घूमने लगी। घरों के बाहर चौंतरों पर बकरी, भेड़ और मुर्गियाँ दीख पड़ती हैं। तालाबों में बत्तखें तैर रही हैं। कुर्सियों पर बैठी हुई स्त्रियाँ ऊन बुन रही हैं तथा बच्चे खेल रहे हैं। सब-कुछ चल-चित्र की भाँति सरकता चला जा रहा है।

एक बड़े गाँव के किनारे की ऊँची भूमि पर लड़कों ने शिविर स्थापित किया है। गाँव के दो स्कूलों में सोने का प्रबन्ध किया गया है। भोजन और अध्ययन के लिए दूसरे मकान हैं। शिविर के चारों ओर की भूमि पीले, सफेद और बैंगनी रंग के फूलों से भरी हुई है। इसके अतिरिक्त पेड़-पत्तों की हरियाली, वातावरण को एक अपूर्व रूप दे रही है। कैम्प के बालक-बालिकाएँ, फूलों, लता-पत्रों और लाल पताकाओं से सजे हुए तोरण-द्वार पर दो पंक्तियों में खड़े होकर हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। जय-ध्वनि के साथ उन्होंने हमारा स्वागत किया। अपने हाथ के बनाए फूलों के गुच्छे उन्होंने हमें भेंट किए। प्रसन्न-मुख लड़कों और लड़कियों का निः-संकोच व्यवहार हमें अति परिचित जान पड़ा। हम सब एक बड़े कमरे में ले जाए गए। वहाँ छोटे वैज्ञानिकों ने कीट-पतंग, तितलियाँ और अनेक प्रकार के पत्ते तथा बीज इत्यादि संग्रह किये हैं। अपनी बनाई हुई तस्वीरों से दीवारें भर डाली हैं। मिट्टी के खिलौने बनाए हैं। सिलाई-बुनाई की चीजें भी रखी हैं। एक ओर पियानो

रखा है जिस पर सामूहिक संगीत हुआ। हम लोग आग्रह के साथ सब-कुछ देखने लगे। नौ वर्ष से लेकर पन्द्रह वर्ष तक के, लगभग सौ लड़कों और लड़कियों ने मिल कर यह शिविर स्थापित किया है। ये सब मास्को से आये हैं तथा सब लेखकों, पत्रकारों और कवियों के बच्चे हैं।

शिविर के लड़कों और लड़कियों के साथ हम लोगों ने बात जल्दी जमा ली। शिविर-संचालन, भोजन-व्यवस्था, सफाई तथा छोटे बच्चों की सहायता के सब काम इन्होंने स्वयं बाँट लिये हैं। परिदर्शिका और शिक्षिकाएँ भी हैं। व्यायाम, खेल-कूद और अध्ययन नियमित रूप से होता है। टुकड़ियाँ बनाकर ये लोग गाँवों में घूमने जाते हैं। प्रकृति के स्वाभाविक वातावरण में किसानों के साथ बैठकर, देश के रचनात्मक कार्यों की चर्चा करते हैं। बातें करने पर पता चला कि सोवियत-शिक्षा-व्यवस्था, प्रत्येक की व्यक्तिगत स्वाभाविकप्रवणता को बड़े यत्न के साथ बढ़ाती जाती है। नौ-दस वर्ष की अवस्था में ही बच्चे भावी जीवन की रूप-रेखा बना लेते हैं तथा समझ लेते हैं कि वे वैज्ञानिक, लेखक या कारीगर आदि में से क्या बनेंगे। इनके स्कूलों की शिक्षा में इसी प्रकार प्रत्येक को व्यक्ति-स्वातंत्र्य का लालन-पालन किया जाता है। हमारे देश के विद्यालयों की भाँति हृदयावेग और बुद्धि से हीन, रटना कराने की बाजारू व्यवस्था यहाँ नहीं है। हमारे देश की शिक्षा-प्रणाली से बच्चों के मन में ज्ञान-लाभ करने या जानने का कोई कौतूहल जाग्रत नहीं होता। हमारे बच्चे निर्दिष्ट पाठ्य-पुस्तकें रटकर और यथासमय उनकी पुनरावृत्ति करके पास होने लायक नम्बर प्राप्त करते हैं। परन्तु यहाँ की शिक्षा का आधार ही मनुष्य बनाना है, परीक्षा में पास कराना नहीं। वृक्ष बढ़ता तो प्रकृति के नियम से ही है, परन्तु जब वह छोटा होता है तो घेरा डालकर उसकी रक्षा करनी पड़ती है और सूर्य के प्रकाश की व्यवस्था की जाती है। ये लोग इसी प्रकार मानव-शिक्षा की आन्तरिक शक्ति के स्वाभाविक विकास के लिए, अनुकूल वातावरण बनाते हैं और यह देखकर बनाते हैं कि इसकी प्रवणता किस दिशा में विकास चाहती है।

हमें आश्चर्य हुआ कि शिविर के किशोर-किशोरियाँ अपने देश की कितनी बातें जानते हैं। अपने कल-कारखाने, अपने अस्पताल, अपनी मशीनी खेती की प्रणाली इन्होंने अपनी आँखों से देखी है। इनकी आशा है कि ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा एवं स्वास्थ्य के द्वारा मनुष्य को जो उन्नत करने का देश-व्यापी उद्योग हो रहा है, एक दिन उसका भार वहन करने की योग्यता अवश्य प्राप्त करेंगे। हम इनकी बातें सुन रहे हैं और सोच रहे हैं कि हमारे देश की संकीर्ण व सीमा-बद्ध-शिक्षा-व्यवस्था द्वारा मानव-जीवन का कैसा अपव्यय हो रहा है। यहाँ सतरह वर्ष की आयु तक सरकारी खर्च पर शिक्षा अनिवार्य है। स्कूल की शिक्षा समाप्त करने

के बाद कोई कालिज में प्रवेश करता है तो कोई कर्म-क्षेत्र में। स्कूल और कालिज से निकलने के बाद कोई बेकार नहीं रहता। इधर हमारे देश के लड़के इण्टर पास करने के बाद भी नहीं जानते कि वे क्या बनेंगे और किधर जायेंगे ! मेडिकल कालिज और इंजिनियरिंग कालिज में भर्ती होने का सौभाग्य तो लाटरी के पुरस्कार-जैसा दुर्लभ रहता है। शिक्षित, स्वस्थ युवक-युवतियों को इस देश में आत्म-सम्मान खोकर नौकरी के लिए द्वार-द्वार पर भीख माँगनी नहीं पड़ती। सोवियत रूस का यौवन हमारे देश की भाँति बेकारी, दारिद्र्य और अचरितार्थता के भारी-भरकम पाषाण-शिलाओं से दबकर, हतोत्साहित और निराशा से म्रियमाण नहीं होता। शिक्षा-शाला से निकलते ही राष्ट्र और समाज की कर्म-शाला के द्वार इनको वरण करने के लिए उन्मुक्त हो जाते हैं।

संध्या होती जा रही है, हमारे विदा होने का समय हो गया है परन्तु ये लोग खिलाए बिना नहीं छोड़ेंगे। गाँव के मुखिया आ गए हैं। उनमें एक पुराने डाक्टर भी हैं, जो अपनी पत्नी के साथ आए हैं। जार का समय इन्हें विदेशों में बिताना पड़ा है, अँगरेजी जानते है। डाक्टर के साथ पुराने दिनों की चर्चा करते हुए हम लोग सजे हुए टेबुल के पास बैठ गए। स्त्रियाँ परोसने लगीं। फिर वे भी अतिथियों के पास बैठ गई और अनुरोध करने लगीं कि यह खाइये, वह खाइये; ठीक उसी प्रकार जैसे हमारे देश की स्त्रियाँ आग्रह करती हैं। पश्चिमी शिष्टाचार की जड़ता इनमें नहीं है। लम्बे शरीर, उन्नत नासिका और नीली आँखों वाली जो स्त्री मेरे पास बैठी है, उसके सब अवयव सुडौल और हास-परिहास से उल्लसित हैं। मैंने कहा—"तुम रूप में लक्ष्मी और गुणों में शायद सरस्वती हो, तुमने विवाह क्यों नहीं किया ? तुम्हें जीवन-संगिनी बनाने वालों का निश्चय ही अभाव नहीं हो सकता।"

तरुणी के मुख पर विषाद की छाया उतर आई। भारी स्वर में उसने कहा—"विवाह हुआ था अब विधवा हूँ; मेरे स्वामी पिछले महायुद्ध में मारे गए है।"

"विधवा विवाह तो तुम्हारे समाज में बुरा नहीं समझा जाता।"

"निश्चय ही बुरा नहीं समझा जाता। तर्क की दृष्टि से देखती हूँ तो इस वैधव्य का कोई अर्थ भी समझ में नहीं आता, किन्तु हृदयावेग एक स्वतन्त्र वस्तु है। ६ वर्ष हो गए हैं परन्तु उनकी स्मृति को आज तक मन से अलग नहीं कर सकी। परस्पर के लिए गंभीर अनुराग और विश्वास लेकर हम लोगों ने अपना नीड़ बनाया था। वे स्वदेश-प्रेमी साहसी युवक थे। फासिस्ट दस्युओं के आक्रमण से पितृ-भूमि की रक्षा करने के लिए युद्ध में कूद पड़े। वीरता और युद्ध-कौशल के लिए उन्हें तीन स्वर्ण-पदक मिले थे। अपने महान् नेता स्तालिन की प्रतिमूर्ति से अंकित पदक मैं आजीवन अपने हृदय पर वहन करूँगी। सोचती हूँ कि अब तक

शायद हमारे बच्चे होते। वे जब नहीं हुए तब मैंने इन 'पायोनियर्स' को ही अपने बच्चे मान लिया है। इनकी सेवा करती हूँ और इन्हें शांति का पाठ पढ़ाती हूँ। युद्ध महानाश ही लाता है।" यह कहते-कहते उसने पूछा—"तुम्हारे देश में तो सुनती हूँ कितनी ही विधवाएँ हैं, वे अपना जीवन कैसे काटती हैं।"

"जीवन क्या काटती हैं? सगे-सम्बन्धियों के यहाँ दासी-वृत्ति करती हैं या तीर्थ-स्थानों में भिक्षा माँगती हैं, समाज में उनका स्थान" .....और बोल नहीं सका।

"क्यों, तुम उन्हें शिक्षिका और नर्स बना सकते हो। हमारे देश में शिशु-पालन-गृह और किंडर गार्टन के स्कूल हैं, तुम्हारे यहाँ नहीं हैं क्या? स्त्रियों के लिए शिक्षा की क्या व्यवस्था है?"

"नहीं है, उन सबके निर्माण में अभी विलम्ब है।" तरुणी ने उन्मन होकर कहा—"वे हमें मिल जातीं तो हम उन्हें सिखा देते कि स्वाधीन-देश के मनुष्यों का निर्माण कैसे किया जाता है।" बातचीत की दिशा बदल कर उसने पूछा—"अच्छा, तुम्हारे देश की स्त्रियाँ भी शान्ति-आन्दोलन चलाती हैं? हम तो इसलिए युद्ध-विरोधी मनोवृत्ति दृढ़ कर रही हैं कि संसार को एक और विश्व-युद्ध का सामना न करना पड़े।"

"हमारे देश की शिक्षित-महिलाएँ युद्ध के विरुद्ध हैं। हम लोग भी युद्ध नहीं चाहते। तीसरा महायुद्ध हुआ तो दरिद्र, भूखे और रोग से तप्त भारत में मृत्यु की महामारी फैल जायगी। शांति-रक्षा के प्रयत्न में हम लोग तुम्हारे ही साथी हैं।"

स्त्री ने आग्रह से मेरा हाथ दबाकर कहा—"अपने देश में लौटकर अपनी स्त्रियों से कहना कि युद्ध बड़ी भयंकर चीज है। हमारे देश में मेरी जैसी कितनी अभागिनियाँ अपने स्वामी और पुत्र गवाँ बैठी हैं। सुख से भरे हुए कितने ही घर भस्म हो चुके हैं। जो बुलट मेरे स्वामी की छाती में लगा था, वह अब तक मेरी छाती में चुभा है। राँगा जैसी भारी उस चीज ने हृदय भाराक्रान्त कर रखा है। सब देशों की स्त्रियाँ एक साथ उठकर खड़ी हो जायँ तो युद्ध रोका जा सकता है।

पायोनियर्स ने 'भारत-सोवियत मैत्री दृढ़ हो' की ध्वनि के साथ हम लोगों को विदा दी। हम लोग मास्को की ओर रवाना हुए। निर्मल आकाश में असंख्य तारे जगमगा रहे हैं। इन्होंने भी एक दिन ऐसी ही अपलक दृष्टि से नात्सी बर्बरता के निष्ठुर हत्या-काण्ड देखे हैं। रूसी युवती की दो वेदनार्त आँखें जैसे अजश्र हो कर अनन्त-शून्य मे शान्ति के लिए मूक और आकुल प्रार्थना कर रही हैं।

पाँच

क्रान्ति-पूर्व-युग के रूसी साहित्य की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति सुविदित है। पुश्किन, गोगोल, टाल्सटाय, तुर्गनेव और गोर्की आदि की रचनाओं के साथ भारतीय साहित्य-रसिकों का थोड़ा-बहुत परिचय है। रूसी साहित्य की यह प्राचीन सम्पदा एक दिन मुट्ठी-भर शिक्षितों में ही सीमित थी, परन्तु आज वह सर्वसाधारण में भी फैल गई है। सम-सामयिक सोवियत-साहित्य भी स्वदेश की सीमा से निकलकर, संसार भर के नर-नारियों को आकर्षित कर रहा है। रूस का आधुनिक साहित्य, श्रेणी-हीन समाज-व्यवस्था के नवयुगीय रूपान्तरित जीवन की आशाओं और आकांक्षाओं की प्रेरणा से अनुरंजित है। विषय-वस्तु और रचना-शैली की दृष्टि से उसकी अपनी विशेषता है, परन्तु विश्व-मानव के वास्तविक जीवन के साथ उसका सम्बन्ध पहले की भाँति ही जुड़ा हुआ है, इसलिए विप्लवोत्तर युग के कवि, नाटककार और लेखक हमारे निकट अपरिचित नहीं हैं।

हम मास्को-लेखक-संघ के अतिथि होकर गए थे। इसीलिए अनेक उपलक्ष्यों में इनके साथ घनिष्ठ परिचय का सुयोग मिला था। मास्को, लेनिनग्राद, स्तालिन-ग्राद, तिबलिस तथा तासकन्द आदि नगरों के लेखकों, कवियों और नाटककारों की यूनियनों ने हमारी अभ्यर्थना की है। हमारा वार्तालाप भावों के आदान-प्रदान तक ही सीमित न रहता था अपितु इन प्रश्नों पर भी गंभीर आलोचनाएँ होती थीं कि वर्तमान युग के संकटों और समस्याओं का समाधान करने में, सब देशों के साहित्यिकों का क्या कर्तव्य है और सभ्यता एवं संस्कृति की रक्षा कैसे की जा सकती है। हमने देखा है कि किसी विशेष मत का पोषण करने के लिए रूस के साहित्यिक, साहित्य की एक ही साँचे में ढलाई या जँचाई नहीं करते। डिकेन्स, अनातोले फ्रांस, शेक्सपियर, बायरन और गेटे आदि की रचनाएँ भी यहाँ पर्याप्त लोक-प्रिय हैं! भारत के प्राचीन और आधुनिक साहित्य एवं संस्कृति के साथ परिचित होने के साथ उनमें अकृत्रिम आकांक्षा है। वार्तालाप में इनके हृदय की व्यापकता को देखकर मुग्ध हुआ हूँ। साहित्य-साधना के क्षेत्र में इन लोगों ने देश-विदेश की सीमाएँ मिटा-कर मानव-मात्र के कल्याणार्थ, अतीत की संरक्षणशीलता के मोह से मुक्त ज्ञान की साधना ग्रहण की है। साहित्य में एक सर्वकालीन आनन्द रूप है, जो तीर्थ में प्राचीन और नवीन द्वारा दिये गए 'सृष्टि-अर्घ्य' के समन्वय में प्राप्त होता है। इस आनन्द रूप को स्वीकार न किया जाय तो रुचि-विकार उत्पन्न हो जाता है। भावों का आदान-प्रदान इस विकार को निकट नहीं आने देता। इसीलिए ये लोग रामायण, महा-

भारत और कालिदास आदि का अनुवाद कर रहे हैं। संस्कृत भाषा के आवरण में अतीत की जो महर्घ विचार-सम्पदा है, वह अपने देशवासियों को दे रहे हैं। भारत के विभिन्न प्रान्तों की प्रचलित भाषाओं एवं आधुनिक साहित्य के प्रति भी ये पर्याप्त उत्सुक हैं। मास्को-विश्वविद्यालय में हिन्दी, बंगला और उर्दू-साहित्य के पठन-पाठन की व्यवस्था हो चुकी है। रवीन्द्रनाथ, प्रेमचन्द, कृष्णचन्द्र, मुल्कराज आनन्द और भवानी भट्टाचार्य की रचनाएँ रूसी भाषा में अनूवादित हो चुकी हैं। इनके पाठकों की संख्या भी कम नहीं है। श्रमिक संस्कृति-भवनों में जो पुस्तकालय हैं उनमें ये सब पुस्तकें देखी हैं। सोवियत सर्वसाधारण की अध्ययन-वृत्ति और सब देशों के साहित्य और संस्कृति के प्रति इनका अनुराग प्रशंसनीय है।

रवीन्द्रनाथ ने किसी अवसर पर कहा था-"साहित्य की सृष्टि साझे का व्यापार नहीं है। इसीलिए हम लोग एकाकी साधना से साहित्य-रचना कर पाए हैं।" मानना पड़ेगा कि वैषयिक क्षेत्र में मिलकर कारोबार करने में अपटु होते हुए भी साहित्य-क्षेत्र में बंगालियों के व्यक्तिगत उद्यम ने बड़ी सफलता प्राप्त की है, परन्तु जिस देश में प्रतिशत पचासी व्यक्ति निरक्षर हैं उसमें साधारण लेखकों और कवियों की बात जाने दीजिये, रवीन्द्रनाथ की रचनाओं का रस ही कितने व्यक्ति उपभोग कर सकते हैं? यहाँ तो सामूहिक मानव के अन्तर का द्वार ही नहीं, वातायन तक बन्द हैं। हमारे देश की एकाकी साहित्य-साधना जहाँ सफल हुई है वहाँ उसके पीछे वेदना का एक इतिहास भी पुंजीभूत हो गया है। गिरि-निर्झरिणी के कल्लोलित नृत्य की नूपुर-झंकार में, पाषाण के कारागृह को भंग करने की वेदना का स्वर भी मिला हुआ है। एक दिन ऐसा भी था जब हमारे कवि सभा-कवि होते थे। सम्राटों और सामन्तों के गुण-गायक तथा विदूषक होकर, उनके प्रासादों में पलने वाले कवि, स्तुति-गान से समय मिलने पर काव्य-रचना करते थे। कालिदास और बाणभट्ट से लगाकर अष्टादश शताब्दी के भारतचन्द्र तक यही धारा प्रवाहित रही है। बंगाल के चिर-स्थायी बन्दोबस्त वाली जमींदार श्रेणी में यह धारा पिछली शताब्दी तक दीख पड़ी है। विदेशी शासन और अँगरेजी के शिक्षितों की अवज्ञा में भी साहित्यिक प्रतिभा का जो विकास हुआ है, वह भी जमींदारों और सरकारी नौकरों के सहारे ही संभव हो सका है। इसके बाद अकस्मात् धन प्राप्त कर लेने वाले एक श्रेणी के मूर्खों और अहंकारी धनियों का आविर्भाव ही दीख पड़ता है; साहित्य और शिल्प-कला उसके निकट अनादृत हो रही और गणतांत्रिक जनता-महाराज को भी उसका सिंहासन नहीं मिला। इस प्रतिकूलता से लड़कर भी जो लोक-प्रिय हुए हैं उनको नमस्कार करते समय, उन सब साहित्यिकों की याद आती है जो दारिद्रय और बुभुक्षा से आजीवन लड़ते रहे हैं, जिन्होंने उदरान्न के लिए रक्त-पिपासु प्रकाशकों के निकटत अपने ग्रन्थ सामान्य मल्य पर बेच दिए हैं। अथवा जो आश्वासन पाकर भी वंचित

ही रह गए ह। हृदय के जिस क्षेत्र में साहित्य की फसल होती है वह हृदय चतुर और विषयी व्यक्तियों के विषाक्त विश्वासों से मरु-भूमि हो गया। तरुणों के कल्पना-प्रवण और संवेदनशील मनों में, जो सोने के स्वर्ग बनाते, अचरितार्थिता की ग्लानि और क्लेद के दीर्घ निःश्वास जमा हो गए। हम यह तो देखते हैं कि अमुक ने अमुक उपन्यास लिखकर धन जमा कर लिया है और अमुक ने सिनेमा की कहानी लिखकर बंगला खड़ा कर लिया है, परन्तु यह नहीं देखते कि जो सहानुभूति की थोड़ी सी सहायता और जीविका के निष्ठुर प्रयास से थोड़ा सा अवकाश पाकर राष्ट्रीय-साहित्य की गौरव-वृद्धि कर सकते थे वे मर रहे हैं, मिट रहे हैं, काल के चिह्न-हीन पथ पर निश्चिह्न हुए जा रहे हैं। मैंने युवावस्था में कवि गोविन्ददास को तीन दिन तक च्यूवड़े चबाने के बाद अभुक्तावस्था में मरते देखा है, सुरेश समाजपति को चिकित्सा के बिना ही चिर-निद्रा में लीन होते देखा है। मैंने बिछौने पर लेटे हुए रुग्ण पचकौड़ी वन्द्योपाध्याय ने एक दिन मेरा ही हाथ पकड़कर कहा था—"मेरे लिए चन्दे का चिट्ठा न बनाना। चन्दे में शायद २७॥।) मिल जायँ, किन्तु वह तो मरणाधिक अपमान होगा।" आगे चलकर किशोर कवि सुकान्त भट्टाचार्य को बिना चिकित्सा के ही यक्ष्मा रोग में प्राण देते हुए देखना पड़ा है। ये बातें आज क्रोध या अभिमान के कारण नहीं लिख रहा हूँ। पटवारी बुद्धि वाले जो लोग साहित्यिकों और लेखकों का अपमान करते हैं, उन्हें सब प्रकार से ठग लेते हैं; मकानों के जो मालिक, साहित्यिक किराएदारों के पीछे गुण्डे लगा देते हैं उनको आज अभिशाप न दूँगा। जिस समाज में जन्म लिया है, उसकी मूढ़ता को क्षमा करूँगा। परन्तु देश के साहित्य-सेवियों की वेदना और व्यर्थता भूल जाने वाली वस्तु नहीं है। हमारे भाग्य में क्या यही लिखा है कि सिनेमा के चमकीले खेलों का क्षणिक उन्माद और रेडियो-संगीत के नाम पर होने वाला रासभ-निनाद ही अपनी स्थूल रुचि के साथ वर्तमान काल पर छाया रहे।

सोवियत रूस में साहित्यिकों की अवस्था सर्वथा भिन्न है। यहाँ साहित्यिक, लेखक और पत्रकार प्रचुर उपार्जन भी करते हैं और उन्हें पूर्ण सम्मान भी मिलता है। सोवियत राष्ट्र और समाज जानता है कि जिनके ऊपर सांस्कृतिक जीवन के मानदंड को उन्नत करने का उत्तरदायित्व है, उनको निर्द्वन्द्व और स्वच्छन्द जीवन व्यतीत करने की सुविधा मिलनी ही चाहिए। अन्यान्य वृत्ति-जीवि श्रमिकों की भाँति इनका भी संघ या यूनियन है। परन्तु संघबद्ध रूप से ये फर्मायशी साहित्य की रचना नहीं करते। लेखकों के संघ इनके व्यक्तिगत हितों और अधिकारों की रक्षा ही करते हैं। भूखे लेखकों को यहाँ समाचार-पत्रों के स्वामियों या प्रकाशकों के द्वार पर फेरे नहीं लगाने पड़ते। यहाँ विभिन्न श्रेणी के दैनिक, साप्ताहिक, मासिक और अन्य सामयिक पत्र प्रकाशित होते हैं। अँगरेजी, फ्रांसीसी

और जर्मन आदि भाषाओं से असंख्य पुस्तकों का अनुवाद किया जाता है, इन सब कामों के लिए सबको समान रूप से पारिश्रमिक मिलता है। लेखकों की अवस्था से लाभ उठाने के लिए प्रकाशक नित नए दाँव नहीं मारते।

विख्यात 'लिट्रेरी गजट' के सम्पादक, लेखक और नाटककार सिमोनव के निमंत्रण पर हम एक दिन 'गोर्की इन्स्टीट्यूट' देखने गये। तरुण-तरुणियों को कवि, साहित्यिक व पत्रकार के रूप में प्रस्तुत करने के लिए लेखक-संघ ने इस संस्था की प्रतिष्ठा की है। जिन विद्यार्थियों में रचना-शक्ति का परिचय मिलता है उन्हें विद्यार्थी-जीवन से बाहर आने के बाद इस संस्था में शिक्षा लेने और आत्म-विकास करने की सुविधा दी जाती है। साहित्य-रचना के अतिरिक्त यहाँ विद्यार्थियों को भाषा-विज्ञान, विभिन्न देशों के 'साहित्यिक इतिहास' और 'मार्क्स-दर्शन' की शिक्षा भी मिलती है। प्रतिष्ठित साहित्यिक और अध्यापक नियमित रूप से यहाँ पढ़ाते तथा छात्रों की रचनाओं में संशोधन करते हैं। शिक्षार्थियों की संख्या इस समय १७० है। छात्रों को किसी प्रकार की फीस नहीं देनी पड़ती। बल्कि उन्हें योग्यतानुसार ढाई सौ से लगाकर आठ सौ रूबल तक भत्ता मिलता है। ट्राम, बस और ट्रेन में आने-जाने के लिए पास दिये जाते हैं तथा सरकारी भोजनालय से भोजन लेने की सुविधा प्राप्त होती है। माता-पिता पर निर्भर रहने वालों की संख्या बहुत कम है।

'गोर्की लिट्रेरी इंस्टीट्यूट' नगर के मध्य में और बगीचे से घिरे हुए एक पुराने मकान में है। सीढ़ियाँ चढ़कर हमने एक बड़े कमरे में प्रवेश किया। 'भारत-सोवियत मैत्री' और विश्व-शांति की जय-ध्वनि के साथ छात्रों ने हमारा अभिनन्दन किया। हम सब मिलकर एक लम्बे टेबुल के दोनों ओर बैठ गए। चाय, केक, बिस्कुट, फल और शर्बत की व्यवस्था की गई। छात्रों और छात्राओं के मुख, आग्रह तथा प्रेम से मुस्करा रहे हैं। इन्हें पहली बार ही भारतीय लेखकों की अभ्यर्थना करने का अवसर मिला है। इनमें प्रायः सभी रिपब्लिकों के छात्र हैं। रूसी, मंगोल, कज़ाक, आर्मेनी, तुर्कमान, साइबेरियन, जार्जियन और उजबेक तो हैं ही; बल्गारिया और रोमानियाँ से भी विद्यार्थी आये हैं। एक अध्यापक ने हम लोगों का सादर स्वागत किया और संस्था का संक्षिप्त परिचय दिया। छात्रों के अनुरोध पर हमें भी अपना परिचय देना पड़ा। फिर प्रश्नोत्तर प्रारम्भ हुए। प्रश्न प्रगतिशील साहित्य तक ही सीमित नहीं रहे, साम्राज्यवाद-विरोधी, स्वाधीनता-आन्दोलन, किसान-मज़दूर आंदोलन की स्थिति, भारत की शिक्षा-प्रणाली और साहित्यिकों की अवस्था आदि पर भी हमें प्रकाश डालना पड़ा। जब हमने बताया कि ब्रिटिश-शासन में समाचार-पत्रों के कण्ठावरोध की जो व्यवस्था थी वह अब बहुत-कुछ शिथिल हो गई है तब एक छात्र ने पूछा—"तुम्हारी गणतांत्रिक शासन-पद्धति में बिना विचार ही नज़र-

बन्द रखने की जो व्यवस्था है तुम उसके विरुद्ध आंदोलन कर रहे हो या नहीं।" गोल-मोल उत्तर देने के सिवाय और कोई मार्ग नहीं दीख पड़ा। अब हम लोगों ने प्रश्न आरम्भ किये। एक मंगोल युवक ने बताया कि सोवियत की प्रतिष्ठा से पहले हमारी कथ्य-भाषा की कोई वर्णमाला नहीं थी। कुछ लोक-गीत तथा कुछ लोक-गाथाएँ कही-सुनी जाती थीं। सोवियत शासन में हमारी अपनी वर्णमाला (रूसी नहीं) बनी है। मंगोल-भाषा में काव्य और साहित्य की रचना हुई है। विद्यालय में मंगोल-भाषा के माध्यम से ही शिक्षा दी जाती है। जनता ने मेरी लिखी हुई कविताओं की प्रशंसा की है। इसीलिए मंगोल रिपब्लिक ने, उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए छात्र-वृत्ति देकर, यहाँ भेजा।

वार्तालाप में बताया गया कि जारकालीन मध्य एशिया में जातीय भाषाओं के स्थान पर बल-पूर्वक रूसी भाषा चलाई जाती थी। विद्यालयों, दफ्तरों और अदालतों में देशी भाषाओं को स्थान न मिलता था। सोवियत काल में जातीय साहित्य और संस्कृति की विशेषता को सुरक्षित रखने के लिए छोटी-से-छोटी उपजाति की कथ्य-भाषा को भी उन्नत किया गया है। केवल २५ वर्ष में ही काव्य, साहित्य, संगीत और अभिनय आदि के द्वारा प्रत्येक भाषा सजीव एवं गतिशील हो गई है। मातृभाषा की अवज्ञा करके कहीं भी रूसी भाषा प्रचलित नहीं की गई। एक आर्मेनियन युवती ने कहा कि तुर्की के अत्याचारों और जार की पीड़ादायक नीति के दो पाटों में पिसकर, हमारा जातीय अस्तित्व इस शताब्दी के प्रारम्भ में मिट जाने के निकट पहुँच चुका था। सोवियत की प्रतिष्ठा के बाद कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व में, हमारी जातीय भाषा और हमारी जातीय संस्कृति को पुनः अपना गौरव प्राप्त हुआ है। एक उजबेक तरुणी ने भी ऐसी बात सुनाई। उसने कहा कि मुल्ला और मौलवी अरबी-फारसी पढ़ते-पढ़ाते थे; उजबेक भाषा केवल कथ्य-भाषा थी। हमने रूसी वर्णमाला ले ली और साहित्य-सृष्टि की। अब विभिन्न देशों का श्रेष्ठ साहित्य, हमारी जातीय नृत्य-संगीत तथा अभिनय-कला में, इतना उन्नत हुआ है कि सम्पूर्ण सोवियत रूस की संस्कृति में हमें विशिष्ट स्थान मिल गया।

'गोर्की इन्स्टीट्यूट' के शिक्षार्थी पाँच वर्ष के अध्ययन के बाद उपाधि प्राप्त करेंगे फिर लेखक-संघ के सदस्य बनेंगे। इसके बाद कर्म-क्षेत्र में उतरेंगे। जीविका के लिए उन्हें विषम प्रतियोगिता के चक्कर में पड़कर अपनी सम्पूर्ण शक्ति का निष्ठुर अपव्यय न करना पड़ेगा। ये लोग सहकारी संस्था के रूप में सृष्टि नहीं करते। एक-दूसरे पर निर्भर होकर, गहरे वातावरण में, प्रसन्न मन के साथ साहित्य-साधना करते हैं। इस साधना में कितना अध्यवसाय होता है, कितनी सहानुभूति होती है, राष्ट्र और समाज कितनी सहायता देता है—इसका उज्ज्वल दृष्टान्त यह 'गोर्की-साहित्य-विद्यालय' है। इन लोगों ने साहित्य, ललित-कला और ललित-कला के साधकों

की भावना, कल्पना तथा सृष्टि के ऐश्वर्य-विस्तार का सुविधा-पूर्ण मार्ग सबके लिए खोल दिया है। इनकी समकालीन साहित्यिक रचनाओं में युद्ध, हिंसा, जाति-विद्वेष और वर्ण-विद्वेष को कोई स्थान नहीं मिलता। साहित्यिकों और लेखकों के अभिनन्दन-समारोह में इन लोगों ने भारत की समस्या और संस्कृति के प्रति अपनी गंभीर श्रद्धा प्रकट की और कहा—"अपने देश में लौटकर आप अपने सतीर्थ्यों, सहयोगियों से कहिए कि सोवियत के लेखक मानव-मैत्री और विश्व-शान्ति में विश्वास रखते हैं। मुनाफाखोरों के लोभ से कलुषित राजनीति असंख्य मनुष्यों की दुर्गति को नहीं देखती और एक नये युद्ध का षड्यंत्र कर रही है। भारत के प्रगतिशील लेखक इसके विरुद्ध जन-मत जागृत करें।" उत्तर देते हुए हमने कहा—"कि दूसरे महायुद्ध में हम स्वाधीन नहीं थे। बृटिश साम्राज्य-वादियों के स्वेच्छाचारी शासन को उलट देने की इच्छा ही हमारे पास थी, फिर भी रवीन्द्रनाथ का पदानुसरण करके हमने फासिस्ट बर्बरता के विरुद्ध जनमत जगाया था। आप लोगों ने फासिज़्म की दारुण, बलगर्वित और दूसरों के अधिकारों को कुचल डालने वाली निर्लज्ज पाशविकता से अपनी ही रक्षा नहीं की है, अनेक कष्ट सहकर योरुप और मानव-सभ्यता को भी बचा लिया है। द्वितीय महायुद्ध के आघात-प्रतिघात में हमें राजनीतिक स्वाधीनता मिल गई है। परन्तु जीवन दारिद्रय से दुर्बल और शिक्षा से वंचित है। अर्थाभाव होते हुए भी हमारे जन-साधारण में पर्याप्त नैतिक बल है। अतलांतिक के दोनों किनारों से सभ्यता के प्रति जो उत्तरदायित्व-हीन विद्वेष उग्र रूप में प्रकट हो रहा है, उसकी अभिसन्धि हमसे छिपी नहीं है। व्यक्ति की जो स्वाधीनता बीसवीं शताब्दी के मनुष्य की श्रेष्ठतम सम्पत्ति है, एंग्लो-अमरीकन षड्यन्त्र उसका गला दबा देने के लिए उद्यत हो गया है। इसके विरुद्ध संग्राम करने में हम आपके सहयोगी हैं। हम भी शान्ति और विश्व-मानव की एकता में विश्वास रखते हैं।"

हमारे उत्तर सुनकर प्रत्येक सभा में हर्ष-पूर्ण करतल-ध्वनि हुई। यूरोप और अमेरिका की उस मनोवृत्ति से हमारा परिचय बहुत पुराना है जिसमें एशिया के प्रति, भारत के प्रति अवज्ञा न सही, बड़प्पन-भरी अनुकम्पा अवश्य झलकती है। रूस के लेखकों का मानसिक गठन पूर्णतया भिन्न है। प्राच्य के प्रति इनकी श्रद्धा, इनका अनुराग और इनका आग्रह देखकर आनन्द ही प्राप्त होता है।

छः

विशाल मास्को नगर में दर्शनीय बहुत-कुछ है। जितना संभव हो रहा है, उतना देखे ले रहा हूँ। विभिन्न वस्तुओं के संग्रहालय ही दस-बारह हैं। हमने केवल चार देखे हैं। 'लेनिन-संग्रहालय' में उनके बाल्यकाल से लेकर मृत्यु तक की स्मृतियों के चिह्न सुसज्जित रूप में रखे हैं। लेनिन द्वारा व्यवहृत वस्तुओं में गोलियों से छिदा हुआ ओवरकोट भी रखा है। स्तालिन ने अपने सत्तरवें जन्म-दिवस पर विभिन्न देशों से जो उपहार पाये हैं, एक संग्रहालय उन्हीं से भर गया है। लेनिन-लायब्रेरी संसार के बृहत् अन्यतम पुस्तकालयों में गिनी जाती है, उसमें दो हजार आदमी एक साथ बैठकर पढ़ सकते हैं। पढ़ने के लिए स्थान पर्याप्त और प्रशस्त है। पाँच सौ कर्मचारी पुस्तकों की देख-भाल करते हैं। पाठकों तक पुस्तकें पहुँचाने के लिए कितने ही लिफ़्ट और एक छोटी-सी रेलवे भी है।

अपने कमरे की खिड़की से क्रेमलिन प्रतिदिन देखता हूँ। जार-कालीन प्राचीन गिर्जाघरों के शिखर, प्राचीरों के ऊँचे मीनार— कल के प्रासाद और आज के सरकारी भवन—का अधिकांश भाग स्पष्ट दीख पड़ता है। इसका आकार-प्रकार और तड़क-भड़क दिल्ली या आमेर के किले से अधिक है। अठारहवीं शताब्दी में राजधानी सैण्ट्स पीट्सवर्ग चली गई परन्तु क्रेमलिन का वैभव म्लान नहीं हुआ। सोवियत काल में तो इसकी ख्याति संसार-व्यापिनी हो गई है। इस विशाल 'प्रासाद-दुर्ग' के एक कोने में एक साधारण अट्टालिका के तीन सीधे-सादे कमरों में स्तालिन का निवास है। चार जुलाई को प्रवेश-पत्र लेकर हम लोगों ने दक्षिण-पूर्वी द्वार से क्रेमलिन में प्रवेश किया। हमारी भाँति और भी कई दल अपने गाइड (पथ-प्रदर्शक) लेकर प्रासाद देखने आए हैं। जारों के पुराने प्रासाद का अधिकांश भाग संग्रहालय हो गया है। उसमें प्रबल प्रतापी जारों के मणि-माणिक्य-मण्डित मुकुट, आकर्षक-अलंकार, घोड़ों के सोने के साज और सोने-चाँदी के पात्र आदि सबसे पहले दृष्टि आकर्षित करते हैं। प्रधान पादरी के वस्त्राभूषण भी जार के वस्त्रों से किसी भी अंश में कम नहीं हैं। यह तथ्य आँखों के सामने स्पष्ट हो गया कि धर्म-तन्त्र और राज-तन्त्र मिलकर सर्वसाधारण का किस प्रकार शोषण और शासन करता था। हमने सुन रखा था कि बोलशेविकों ने जारों के धन-रत्न और शिल्प-कला के अनेक उत्कृष्ट निदर्शन लूट लिये हैं। यहाँ और लेनिनग्राद के विण्टर पैलेस में जो कुछ देखा है, वह इस चर्चा के विपरीत है। चार शताब्दी के सम्राटों की संगृहीत वस्तुओं, ईरान और तुर्की के शाहों व सुल्तानों के हीरा-मुक्ता वाले पान-पात्रों और सन्दूकों तथा फ्रांस, जर्मनी और आस्ट्रिया के सम्राटों की उपहार-सामग्रियों का बड़े

यत्न से संरक्षण किया गया है। सम्राटों के प्रासादों की सजावट का सामान, दीवालों और छतों की सुनहली शिल्पकारी, फ्रांसीसी और इटालियन शिल्पियों की अनवद्य सृष्टि सब-कुछ अक्षत अवस्था में उपस्थित है। बचपन में मास्को के जिस विशाल घण्टे को संसार के आठवें आश्चर्य के रूप में पढ़ा था वह भी वैसी ही भग्नावस्था में रखा है। ऐश्वर्य, विलास और प्रताप अपना विषाद-पूर्ण निदर्शन यहाँ छोड़कर सदा के लिए इतिहास के पृष्ठों पर सो गया है। जैसे कोई विशालकाय प्रागैतिहासिक जीव अपना कंकाल छोड़कर चला गया है।

सामन्ती युग की निष्ठुर शासक-श्रेणी में भी कभी-कभी उदार मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। हमारे देश में भी ऐसे कई राजाओं, जमींदारों, यहाँ तक कि डाकुओं की कहानियाँ सुनी जाती हैं जो दयालु, दाता और गरीबों तथा पीड़ितों के बन्धु थे। जार-साम्राज्य के एक ऐसे ही व्यक्ति की कहानी सुनकर कौतूहल हुआ। हमारी गाइड या परिचालिका कामरेड अकमाना देवी ने उसकी कहानी रात को भोजन के टेबुल पर सुनाई और आश्वासन दिया कि सवेरे उसका प्रासाद देखने चलेंगे, वह भी एक संग्रहालय है।

अठारहवीं शताब्दी के अस्तानफिनो बहुत बड़ी जमींदारी और क्रीत-दासों के मालिक थे। फ्रांसीसी साहित्य और संस्कृति के प्रति अनुराग रूसी कुलीनों में एक फैशन हो गया था। आहार-विहार,चाल-चलन,वसन-भूषण, साजो-सामान और गृह-निर्माण आदि में फ्रांस की पूरी नकल की जाती थी। युग-धर्म के प्रभाव से स्तानफिनों ने भी फ्रांसीसी संस्कृति की भाव-धारा से आकण्ठ जल-पान किया था। पैतृक सम्पत्ति के स्वामी बनते ही उन्होंने सार्फ या भूमिदासों को मुक्त करने का संकल्प कर लिया था। परन्तु भय दीख पड़ा कि दास-प्रथाओं में पशु की भाँति जीवित रहने वाले असहाय और पर-निर्भर मनुष्य मुक्ति पाते ही मर जायँगे। अस्तानफिनों ने दासों को कलाओं और विद्याओं में दक्ष करने के लिए शिक्षा की व्यवस्था की। समाज की सबसे निचली श्रेणी के मनुष्यों में स्थानीय स्थपितों, कवियों, साहित्यिकों, चित्रकारों, अभिनेताओं, अभिनेत्रियों और नर्तकियों आदि की सृष्टि हुई। स्तानफिनों कला-रसिक और रंगमंच-प्रिय थे। मास्को में उन्होंने सात रंगशालाएँ बनवा डालीं। मास्को के उपकंठ में उनके दासों ने एक विशाल प्रासाद बनाया था, प्रासाद को चित्रों, भास्कर्य और शिल्प-कला आदि से आपाद-मस्तक सजा दिया था। सोवियत सरकार ने प्रासाद को संग्रहालय में बदल दिया है। अस्तानफिनों ने एक रूपसी और विदुषी दासी से विवाह किया। किंतु अत्यन्त धनिक होते हुए भी उसे सामाजिक मर्यादा न दिला सके। क्षोभ और अपमान से भरकर महिला ने आत्म-हत्या कर ली। अस्तानफिनों के विख्यात चित्रकारों और शिल्पियों को जार गवर्नमेण्ट ने साइबेरिया में निर्वासित कर दिया। अस्तानफिनों का इतना

बड़ा अपमान कुलीन समाज चुपचाप सह लेता तो उसकी नाक कट जाती। अस्तानफिनों का हृदय चूर-चूर हो गया और उन्होंने प्राण त्याग दिये।

मास्को के उत्तर-पश्चिमी किनारे पर अस्तानफिनों का प्रासाद है। प्रासाद के सामने एक बड़ा तालाब है और चारों ओर विस्तीर्ण उद्यान। तालाब में छोटी-छोटी नावों पर तरुण-तरुणियाँ, 'वाइच' खेल रहे हैं। एक किनारे पर एक बड़ा गिर्जा है, इस की अधिक देख-भाल होती नहीं जान पड़ती। प्रासाद की बगल में खाने-पीने, शरबत तथा कुलफी आदि की दुकानें हैं। दर्शनार्थी नर-नारियों ने मेले का रूप ले लिया है। पशमीने के जूते पहनकर हमने प्रासाद में प्रवेश किया। कड़े जूतोंकी रगड़ से फर्श के काठ पर की गई सूक्ष्म कारीगरी नष्ट हो जायगी, इसीलिए यह प्रबन्ध किया गया है। विभिन्न प्राकृतिक रंग वाले काठों के टुकड़े जोड़कर फर्श पर जो कारीगरी की गई है वह देखने से ही सम्बन्ध रखती है—चित्रों और भास्कर्य कला के ऐसे अद्भुत संग्रह की प्रशंसा शब्दों में नहीं की जा सकती। जिन लोगों ने हैदराबाद का 'फलकनुमा प्रासाद' या बड़ौदा का राजमहल देखा है वे इस प्रासाद के सौंदर्य का कुछ अनुमान लगा सकते हैं। यूरोप के विभिन्न देशों से लाई गई विचित्र वस्तुओं का कैसा आश्चर्यजनक समावेश है! बड़ी नाट्य-शाला और नाच-घर की सजावट देखते ही बनती है। कला-रसिक और उन दिनों के प्रगतिशील कुलीन होने के कारण ही अस्तानफिनों की यह स्मृति सुरक्षित रखी गई है।

५ जुलाई को सबेरे सरकारी कृषि-गवेषणागार देखने के लिए हमने गोर्की-ग्राम की यात्रा की। यहाँ के प्राकृतिक दृश्य हमारे बंगाल-जैसे नहीं हैं। ऊँचे-नीचे तरंगायित शस्य-क्षेत्र हैं, कहीं-कहीं वार्च और पाइन के वन मिल जाते हैं। छोटी-छोटी क्षीण-स्रोता नदियाँ हैं, जिनमें सैकड़ों बत्तखें तैर रही हैं—कुछ किनारे पर बैठी हैं और आँखें बन्द किये हुए धूप का आनन्द ले रही हैं। मन्थर गति वाली घोड़ा-गाड़ियों पर सवार युवक-युवतियाँ गीत गाती जा रही हैं। रंगीन वस्त्रों से सजी कृषक-नारियाँ आलू और सब्ज़ी के खेतों में काम कर रही हैं। साथ-ही-साथ विस्मय-भरी दृष्टि से हमारी ओर देख भी लेती हैं। बड़े पेड़ों के नीचे बैठे हुए बच्चों ने खेल-कूद और हास-परिहास की महफ़िलें गरम कर रखी हैं। ऐसे ही कितने दृश्य-खंड आँखों के आगे आते हैं और चले जाते हैं। दूर स्थित धूसर पहाड़ की स्थिर पट-भूमि पर प्रकृति और मनुष्य की सृष्टि अपने विशिष्ट रूप में उद्भासित हो रही है। आसनसोल से हजारी बाग तक की मोटर-यात्रा बारम्बार याद आती है।

दिगन्त-विस्तृत कृषि-क्षेत्र के एक कोने पर कृषि-गवेषणागार है। लिसिस्को-पद्धति से गेहूँ और राई पर अन्वेषण हो रहा है। अध्यक्ष ने गेहूँ और राई के मिश्रण से उत्पन्न तथा राई से अधिक उत्कृष्ट एवं अधिक फलने वाला पेड़ दिखाया। उन्होंने

यह भी समझाया कि दीर्घकालीन वैज्ञानिक गवेषणा और परीक्षा आदि के द्वारा किस फल-फूल और फसल में कितनी उन्नति हुई है। अध्यक्ष महोदय की बातें समझने योग्य पांडित्य हममें से किसी के भी पास नहीं था परन्तु पत्रकार होने के नाते सर्व-शास्त्र-विशारद बनकर हमने दो-चार प्रश्न किए। जवाब मिला कि उत्तर मेरु के निकट स्वल्प, स्थायी ग्रीष्म-काल में जल्दी गेहूँ उत्पन्न करने की चेष्टा सफल हुई है। परन्तु एक बार गेहूँ बोकर दो-तीन बार फसल लेने के प्रयत्न में अब तक सफलता नहीं मिली। हमने देखा कि फलों के बाग में विशेष खाद डालने तथा कलम करने से सेव आदि का आकार और उपज बढ़ाई जा सकती है।

गवेषणागार के अध्यक्ष हमें गो-पालनागार में भी ले गए। विभिन्न जाति के कुछ साँड तथा डेढ़ सौ गायें हैं। यहाँ मिश्र प्रजनन से गो-वंश को उन्नत करने की चेष्टा की जाती है। इतनी बड़ी गायें मैंने कभी नहीं देखीं। इस बात पर भी विश्वास करना पड़ा कि ये बीस से लगाकर तीस सेर तक दूध रोज देती हैं। यहाँ से देश के विभिन्न केन्द्रों को उत्कृष्ट साँड और बैल भेजे जाते हैं। अकस्मात् अपने देश की क्षीण-काया और शुष्कस्तना गोमाताएँ याद आ गई। 'गोमाता के लिए' हम नर-हत्या करना भी पुण्य समझते हैं। किंतु बछड़े को भूखा मारना और फूका द्वारा दूध निकालना पाप नहीं मानते। बैलों के प्रति हमारी पीड़ा का मात्र प्रमाण यह है कि विधान-सभाओं में हमने गो-हत्या को कानूनन निषिद्ध कर दिया है। परन्तु केवल रूस ही नहीं, सम्पूर्ण यूरोप के गो-भक्षकों द्वारा होने वाली गो-पालन की यत्न-पूर्ण व्यवस्था देखकर मस्तक लज्जा से नत हो जाता है।

अध्यक्ष के साथ हम कृषि-क्षेत्र में भी गये। दिगन्त-विस्तीर्ण ऊसर भूमि हजारों वर्ष से वंध्या पड़ी थी। वार्च, पाइन और ओक के जंगल लगाये गए, तीव्र और शुष्क वायु रोकी गई, सिंचाई की समुचित व्यवस्था की गई और ऊसर भूमि शस्यशालिनी हो गई। अनुर्वर मैदान को जोतने के लिए संग्राम हो रहा है, प्रधान शस्य ओक-वृक्ष के पौधे सबल हो रहे हैं। जंगल तैयार होते जायँगे और शस्य-क्षेत्र आगे बढ़ते जायँगे। बहुत दिनों की खाली भूमि पर छाती तक राई की फसल के बीच में खड़ा हुआ तो स्पष्ट दीख पड़ने लगा कि ये लोग सब-कुछ कर सकते हैं; क्योंकि तीस वर्षों में इन्होंने आदि कालीन कृषि-व्यवस्था में विज्ञान का यंत्र-युग ला दिया है। उधर हमारे किसानों के लिए अब तक श्री रामचन्द्र या अशोक-कालीन हल, बैल और दैव की दया से होनेवाली वर्षा ही सबसे बड़ा सहारा है। विदेशों से हम अन्न खरीदते हैं, अन्न उत्पन्न करने वाले यंत्र नहीं खरीदते। अन्न-संग्रह करके जीवित रहने की व्यवस्था हमारी आदि कालीन ही रह गई है परन्तु मरने और मारने के लिए विदेशों से अति आधुनिक मारण-यंत्र मँगाने में कम उत्साह नहीं दिखाते। किसान का लड़का अकबरकालीन लकड़ी का हल लेकर खेत पर

जाता है—वही लड़का पुलिस या सेना में भर्ती हो जाय तो उसके हाथ में उस समय की लाठी या बल्लम नहीं होते अपितु मानव-समूह को मार डालने वाली रायफल आ जाती है।

गोर्की-ग्राम के एक भवन में ही लेनिन (१९१८-१९२४) निवास करते थे। लगभग एक सौ बीघे के उपवन और उद्यान के बीच में एक दोतल्ला और सुगठित भवन है, पश्चिम में नील पाइन का वन ढालू होकर उतरता चला गया है। देखते ही मालूम होता है कि क्रान्ति से पहले यह किसी धनी कुलीन का प्रमोद-भवन था। भवन के बाहर नौकरों के मकानों और पाकशाला आदि का स्वतन्त्र प्रबन्ध था। अब यहाँ सोवियत सेना के पहरेदार रहते हैं। कोई व्यक्ति किसी चीज़ या वृक्षादि को नष्ट न करे इसके लिए कड़े पहरे की व्यवस्था है। नवीन रूस का यह एक प्रधान तीर्थ-स्थान है। बसों, लारियों और गाड़ियों में बैठकर नर-नारियों के दल-के-दल यहाँ आते हैं। भवन की सीमा में धूम्र-पान नहीं किया जा सकता। लेनिन के पुस्तकालय, शयनागार और बैठक का सब सामान सजाकर रखा गया है। परि-दर्शिका ने उनके पत्र, फुटकर लेख और चित्र आदरपूर्वक दिखाए। लेनिन के भाषण का एक रिकार्ड भी सुनाया गया, कण्ठ-स्वर स्पष्ट, सतेज और आवेगपूर्ण है। स्तालिन, मोलोटोव और किरोव आदि बॉलशेविक नेताओं के साथ जिन बेंचों पर बैठकर लेनिन परामर्श करते थे उन्हें चिह्नित करके रखा गया है। बाहर के गैरिज में लेनिन द्वारा बहुत पुराने मॉडल की दो रोल्स रायस गाड़ियाँ भी रखी दीख पड़ीं।

एक निर्मल स्थान की तरु वीथिका के अन्तराल में बैठा तो स्मरण आया कि १९२४ की २१ जनवरी को मानव-इतिहास के अनन्य साधारण क्रान्तिकारी नेता महान् लेनिन केवल ५४ वर्ष की अवस्था में इसी भवन में, चिरनिद्रा में लीन हुए थे। शिशु सोवियत के लिए वह दिन महा दुर्दिन थे। कम्युनिस्ट पार्टी के सेक्रेटरी और लेनिन के एकनिष्ठ शिष्य कामरेड स्तालिन ने लेनिन के नाम की शपथ ग्रहण की थी कि लेनिन के बताये हुए मार्ग पर चलकर मार्क्सवाद की पाषाण-जैसी कठोर नींव पर कृषकों और श्रमिकों के राष्ट्र की दृढ़ प्रतिष्ठा की जायगी। इस शपथ का स्तालिन ने दिल दहला देने वाली उथल-पुथल में अक्षरशः पालन किया है। सुसंबद्ध और शक्तिशाली सोवियत का समाजतांत्रिक राष्ट्र आज सर्वस्व-हीन और पीड़ित जनता की मुक्ति का मार्ग-दर्शक और पूंजीवादी शोषक-श्रेणी के लिए दुश्चिन्ता का स्थल बन गया है।

सात

रूस के पत्रकारों को घनिष्ठ रूप से मिलने-जुलने के कितने ही अवसर प्राप्त हुए हैं। अकेले मास्को नगर से ही सात-आठ दैनिक पत्र प्रकाशित होते हैं। विभिन्न विषयों के सचित्र और साधारण साप्ताहिक, मासिक तथा सामयिक पत्रों की संख्या असंख्य है। दैनिक पत्रों में 'प्रवदा' का प्रचार सबसे अधिक है। लन्दन के 'टाइम्स' की भाँति मास्को का 'प्रवदा' भी अर्द्ध-सरकारी पत्र है। इसमें कम्युनिस्ट-पार्टी तथा सरकार के मत को प्रमुखता दी जाती है। लेनिनग्राद और स्तालिनग्राद से भी प्रतिदिन 'प्रवदा' प्रकाशित होता है। 'प्रवदा' के बाद 'इज-बेस्ता' और अन्य दैनिक हैं। प्रत्येक दैनिक पत्र अपने निजी दृष्टिकोण को महत्त्व देकर समाचार देता और आलोचनाएँ करता है। उन सबमें अपना-अपना वैशिष्ट्य और विचार-स्वातंत्र्य है। रुचि-भेद से पाठकों की श्रेणियाँ भी अलग-अलग बन गई हैं। समाजवादी पत्रों में चोरी, डकैती, कचहरी, धनिकों की मौज, भोज-सभा के अतिथियों की सूचियाँ, नेताओं के भाषण, धनी समाज के विवाहों और प्रेम-लीलाओं के समाचार प्रकाशित नहीं किये जाते। विदेशी समाचारों में से श्रमिक, किसान-आन्दोलनों की उथल-पुथल और युद्ध के कूटनीतिक द्वन्द्वों के थोड़े-बहुत समाचार होते हैं। किन्तु प्रमुखता अपने सोवियत रूस के समाचारों को ही दी जाती है। आजकल दैनिक पत्रों में शान्ति-आन्दोलनों के समाचारों को अधिक स्थान दिया जाता है; पुनर्गठन, शिक्षा, स्वास्थ्य और वैज्ञानिक व्यापारों के समाचार अधिक होते हैं। ऐसे समाचार-पत्र भी हैं जिनमें खेल-कूद, अभिनय, नृत्य, सिनेमा और कल-कारखानों इत्यादि पर भी आलोचनाएँ होती हैं।

एक दिन 'लिट्रेरी गजट' के प्रधान सम्पादक सीमोनव के निमंत्रण पर हम उनके कार्यालय की एक सान्ध्य बैठक में सम्मिलित हुए। कुछ विशिष्ट लेखक और पत्रकार उपस्थित थे। दैनिक 'लिट्रेरी गजट' की प्रचार-संख्या साढ़े सात लाख है। इसमें देश-विदेश की साहित्य-समालोचना और उत्तम रचनाओं के अनुवाद को ही मुख्य स्थान दिया जाता है। घर और बाहर की अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ भी आलोचित होती हैं। रूस के बुद्धिजीवी क्षेत्रों में ही इसकी पाठक-संख्या अधिक है। वार्तालाप में सीमोनव ने कहा—"हमारे समाचार-पत्रों के सम्बन्ध में कई भ्रान्त धारणाएँ फैली हैं। कहा जाता है कि हमारे पत्रों को स्वाधीनता नाम की कोई वस्तु प्राप्त नहीं है। सरकारी सेंसर की अनुमति प्राप्त किये बिना हम कुछ भी प्रकाशित नहीं कर सकते। गवर्नमेण्ट और कम्युनिस्ट पार्टी का गुण-गान करना ही हमारा एक-मात्र कार्य है, परन्तु ये सब आरोप निराधार हैं। सर-

कारी विभागों की भूलों पर हम लोग आवश्यकतानुसार लिखते हैं। उन्होंने अपने पत्र की फाइल में से दो-एक दृष्टान्त दिखाए। तेल साफ करने वाले किसी तेल के कारखाने में तेल की बर्बादी पर तथ्यपूर्ण आलोचनाएँ की गई थीं। आलोचना के उत्तर में तेल-विभाग के मंत्री ने स्वयं पत्र लिखा और भूल स्वीकार की, कृतज्ञता प्रकट की और आश्वासन दिया कि व्यवस्था में अविलम्ब सुधार किया जायगा।"

सिमोनव ने एक ऐसा लेख पढ़कर सुनाया जिसमें कम्युनिस्ट-पार्टी के कामों की कठोर आलोचना की गई थी। पार्टी के सांस्कृतिक मोर्चे पर काम करने वालों की विद्या, बुद्धि और प्रचार-कार्य की शैली के सम्बन्ध में व्यंग्य और विद्रूप के तीखे बाण मारे गए थे। उन्होंने कहा कि गर्मी की छुट्टियों में विभिन्न स्वास्थ्य-गृहों के किसानों और श्रमिकों की सांस्कृतिक उन्नति के लिए जिन्हें भेजा जाता है, वे उनकी अयोग्यता पर प्रायः लिखते रहते हैं। सब सरकारी और गैर-सरकारी संस्थाओं का मुख्य उद्देश्य जन-कल्याण ही है। भूलें सर्वत्र होती हैं; उनके प्रति सजग रहना ही पत्रकार का व्रत है। अपने इस कर्तव्य का पालन करने की स्वाधीनता हमें प्राप्त है।

मैं रूसी भाषा नहीं जानता; समाचार-पत्रों के सम्बन्ध में सब तथ्य जान लेना यों भी कठिन है। फिर भी इनके समाचार-संकलन, प्रचार और संचालन की धारा हमारे देश-जैसी नहीं है। हमारे समाचार-पत्र अपने शैशव-काल में ब्रिटिश-समाचार-पत्रों का दूध पीकर बालिग हुए हैं; यह सम्बन्ध अब तक जैसा-का-तैसा चला आता है। आकार-प्रकार और शैली आदि में विलायती पत्रों की हूबहू नकल करते हैं। कोई अपनी निजी धारा बनाने का हम साहस नहीं कर पाए हैं। फ्रांस के एक विख्यात सम्पादक ने एक बार मुझसे कहा था—"भारत के अँगरेजी पत्रों में विदेशी समाचारों को इतना महत्त्व क्यों दिया जाता है। ऐसा जान पड़ता है कि हम इंग्लैण्ड का कोई पत्र पढ़ रहे हैं।" मैंने उत्तर दिया था—"हम भारत में अँगरेजों द्वारा संचालित पत्रों के आदर्श का अनुसरण करते हैं। वे लोग जिस श्रेणी के समाचारों को महत्त्व देते हैं उसी श्रेणी के समाचारों को वैसे ही महत्त्व और विस्तार न दें तो अँगरेजी-पढ़े लिखे भारतीय देसी पत्र छूना पसन्द भी न करें। दूसरा कारण यह है कि समाचारों के संग्रह और प्रचार करने के लिए हमारे पास अपना कोई राष्ट्रीय संगठन भी नहीं है। समाचारों का एक-मात्र व्यापारी 'रूटर' ही हमारे लिए एक-मात्र आधार है"। अब परिस्थिति में कुछ परिवर्तन अवश्य हुआ है।

एक सज्जन ने जिज्ञासा की—"आपके देश में समाचार-पत्रों को कितनी स्वाधीनता प्राप्त है। उत्तर में हममें से एक ने कहा कि हमारे देश के नए विधान ने समाचार-पत्रों के विचार-स्वातंत्र्य का मौलिक अधिकार स्वीकार नहीं

किया। प्रेस को नियंत्रित रखने के कानून भी मौजूद हैं। फिर भी हम सरकार की भूलों और भ्रान्तियों पर बड़ी स्वाधीनता के साथ आलोचना करते हैं। मैंने कहा—"हमारे देश के अधिकांश बड़े दैनिक पत्र स्वामियों के स्वार्थ से संचालित होते हैं, स्थिर स्वार्थ का समर्थन करने वालों को स्वाधीनता की आवश्यकता भी नहीं पड़ती। इसका कारण यह है कि उनकी कोई स्थिर विचार-धारा ही नहीं है। प्रगतिशील बुद्धिजीवियों को साप्ताहिक और मासिक पत्रों में ही स्वतंत्र रूप से विचार प्रकट करने की सुविधा मिलती है। दो चार पत्र ऐसे भी हैं जिनमें स्थिर स्वार्थों के विरुद्ध किसानों, मजदूरों और निम्न मध्य श्रेणी के लोगों की माँग का समर्थन किया जाता है। अन्यान्य पूंजीवादी देशों की भाँति हमारे देश में भी विभिन्न विचार-धाराओं के पत्र हैं। प्रेस का दमन करने वाले कानूनों की उपस्थिति में भी अँगरेजी शासन-जैसी कठोर खींच-तान अब नहीं है।"

चर्चा धीरे-धीरे पत्रकारों के वेतन, उपार्जन और सुरक्षा पर पहुँची; एक सज्जन ने कहा—"हमारी यूनियन पत्रकारों के हितों और अधिकारों की सतर्क प्रहरी है। यूनियन के सदस्य स्वाधीन रूप से अपनी-अपनी रुचि और योग्यतानुसार काम करते हैं। वेतन, भत्ता, छुट्टी और लिखने के पारिश्रमिक की दर आदि सब-कुछ निश्चित हैं। मालिकों के मुनाफे के लिए पत्रों का संचालन नहीं होता। फलतः लाभ का सम्पूर्ण भाग मकान, स्वास्थ्य-गृह, विद्यालय और औषधालय आदि पर व्यय होता है। पत्रकारों के बच्चों के लिए पायोनियर्स कैम्पों और देश-भ्रमण की यात्राओं का प्रबंध भी किया जाता है। पत्रकार पहले-पहल डेढ़ हजार रूबल मासिक वेतन पर काम प्रारम्भ करते हैं। अधिकांश का मासिक वेतन ढाई हजार से छै हजार रूबल तक है, विशेष लेख के लिए प्रति कालम सौ रूबल दिये जाते हैं। तीस वर्ष के बाद पेंशन देने की व्यवस्था की गई है। हमारे देश में समाचार और सामयिक पत्रों का इतना प्रसार हो रहा है कि बेकारी का प्रश्न ही नहीं उठता।"

भारत लौटने पर कई मित्रों ने कहा है, रूस के पत्रकारों की आर्थिक अवस्था अच्छी हो सकती है, परन्तु उन्हें एक विशेष विचार-धारा का समर्थन करना पड़ता है। तुमने यह भी पूछा कि तुम्हें स्वतंत्र रूप से सोचने और लिखने का कितना अधिकार प्राप्त है? मानता हूँ कि ऐसा कोई प्रश्न मैंने नहीं किया। प्रश्न करता और इसके उत्तर में ऐसा ही प्रश्न मुझसे पूछा जाता तो उत्तर देना कठिन हो जाता। मैं जानता हूँ कि अपने देश में स्वतंत्र विचार प्रकट करने के लिए क्या मूल्य देना पड़ता है। प्रत्येक बड़े समाचार-पत्र में उसके मालिकों और मालिकों के पृष्ठ-पोषक धनियों तथा राजनीतिक क्षमता-चक्र (सत्ता) के अधिकारियों के विचार ही व्यक्त होते हैं। 'विवेक' के नाम पर कोई सम्पादक मित्र

विचार-धारा ग्रहण करने का साहस करता है तो उसके मुँह की रोटी छीन ली जाती है और अपील करने योग्य कोई दरबार भी उसे नहीं दीख पड़ता। इस सम्बन्ध में अधिक चर्चा न करना ही अच्छा होगा।

रूस के पत्रकारों ने अपने वेतन, उपार्जन, सुरक्षा और अशक्त हो जाने पर भूखे न मरने के लिए जैसा प्रबन्ध कर लिया है, वैसा ही कुछ प्रबन्ध यूरोप और अमेरिका में भी हुआ है। वहाँ भी संगठित पत्रकार-संघ मालिकों के स्वेच्छाचारों को नियंत्रित तथा व्यक्तिगत सुरक्षा और मर्यादा की रक्षा करते हैं। हमारे देश में मालिक अपने व्यापारिक स्वार्थों की रक्षा के लिए संगठित हुए हैं। पिछले दस-बारह वर्षों में ये लोग पत्रकारों की व्यक्तिगत सुरक्षा के लिए कोई निश्चित नियम नहीं बना सके। किसी-किसी पत्र में प्राविडेण्ट फण्ड है, कोई मालिक व्यक्तिगत रूप से दया और उदारता भी दिखाते हैं परन्तु उसे अनुग्रह ही कहा जा सकता है। पत्रकारों की ओर से पिछले तीस वर्षों में कई छोटी-मोटी चेष्टाएँ हुई हैं, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली। शिक्षित-वर्ग की बेकारी पत्रकारों के हितों की रक्षा के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। मालिक इतने निर्बोध नहीं हैं कि वे इस स्थिति का लाभ उठाने से चूक जायँ।

रूस की स्त्रियाँ अमेरिका और ब्रिटेन की तुलना में भी अधिक संख्या में पत्रकार बनती हैं। 'तास', 'प्रवदा' और ऐसे ही अन्य संगठनों से जो लोग हमसे मिलने आये उनमें स्त्रियों की संख्या ही अधिक थी। उनके प्रश्नों से प्रकट हुआ कि वे भारत के सम्बन्ध में बहुत-कुछ जानती भी हैं। एक ने पूछा—"तुम्हारे देश की स्त्रियाँ पत्रकार क्यों नहीं बनतीं!"

उत्तर दिया कि सुयोग का अभाव ही इसके लिए उत्तरदायी हो सकता है। कितनी ही बुद्धिमती स्त्रियों में आग्रह दीख पड़ता है, परन्तु हमारे पत्रों के कार्यालयों का वातावरण अनेक कारणों से स्त्रियों के लिए अनुकूल नहीं है। सामाजिक प्रथाएँ भी हैं ही? आधुनिक शिक्षित महिलाएँ अवश्य आगे बढ़ रही हैं। हमारे पत्रों में नियमित रूप से लिखने वाली स्त्रियाँ अनेक हैं परन्तु पत्रकार-कला पर पूर्णतया निर्भर हो जाने वाली स्त्री शायद एक भी नहीं है।

रूसी पत्रों के आकार हमारे पत्रों से भी छोटे हैं। कोई भी दैनिक चार पृष्ठ से आगे नहीं बढ़ता। पत्रों में विज्ञापन नहीं होते, क्योंकि व्यापारिक प्रतियोगिता ही नहीं है। पत्र की बिक्री से ही प्रेस और कर्मचारियों का व्यय चलाना पड़ता है। कुछ पत्रों के कार्यालय, साज-सामान और विशाल छापेखाने आदि देखकर आश्चर्य हुआ है। अपने देश के बड़े-बड़े पत्रों के कार्यालय भी इनकी तुलना में बहुत हल्के हैं।

आठ

मास्को में ट्रामों, बसों, ट्राली बसों की बहुत बड़ी संख्या है और शहर के बाहर इनका यातायात अविराम होता है। बसों आदि में भीड़ होती है, परन्तु धक्का-मुक्की के दृश्य नहीं दीख पड़ते। इसका प्रधान कारण यह है कि यहाँ मैट्रो या भूगर्भ रेलवे भी है और इसमें प्रतिदिन सतरह लाख आदमी सवार होते हैं। यह भूगर्भ रेलवे मास्कोवासियों के लिए गर्व की वस्तु है। एक रोज दिन के तीन बजे हम लोग होटल के निकट वाले 'रेवेन्यूशन' स्क्वायर नामक स्टेशन पर उपस्थित हुए। एलीवेटर या स्कोल्टर पर खड़े होते ही सरसराते हुए पातालपुरी में उतर गए। पातालपुरी तो है ही! इसे स्टेशन कौन कहेगा? यह परियों के राज्य का रहस्यपूर्ण प्रासाद जान पड़ता है; चिकने संगमर्मर का चबूतरा है और दीवारों पर दर्शनीय कारीगरी है। पन्द्रह हाथ चौड़े और डेढ़ सौ हाथ लम्बे चबूतरे पर दोनों ओर विद्रोही और पिछले महायुद्ध में भाग लेने वाले वीरों की वज्र-निर्मित दीर्घकाय मूर्तियों का समावेश है। मूर्तियों की गठन से प्रतीत होता है कि सोवियत की स्वदेश-रक्षा का संकल्प ही जमकर खड़ा हो गया है और मृत्यु को भी चुनौती दे रहा है, मधुर और उज्ज्वल आलोक से कोना-कोना प्रकाशित है, धूल और कूड़ा-कर्कट कहीं भी नहीं दीख पड़ता। इसके दोनों ओर प्रशस्त बरामदा और प्लेटफार्म है, हर दूसरे मिनट पर गाड़ी आती है और जाती है। यात्री शृंखला के साथ चढ़ते और उतरते हैं।

पेरिस, लन्दन और न्यूयार्क की भूगर्भ-रेलवे को देखने वाले भी इस भूगर्भ रेलवे का रूप-रंग और तड़क-भड़क देखकर अवाक् रह गए। हमने पाँच स्टेशन देखे, प्रत्येक की बनावट और सजावट सर्वथा स्वतंत्र है। ओराल पर्वत के विभिन्न रंग वाले संगमर्मर के समन्वय से विभिन्न ललित-शिल्प की विशेषता व्यक्त की गई है। प्रत्येक स्टेशन पर प्रकाश का ढंग तक स्वतंत्र है, गाड़ियाँ भी स्वतंत्र हैं; चमड़े की ऊँची गद्दियाँ हैं, निकल की पालिश से चमकते हुए हैण्डल लगे हैं। स्टेशनों और गाड़ियों में यात्रियों के लिए इतनी सुख-सुविधापूर्ण व्यवस्था समाजतांत्रिक समाज में ही संभव है। भूगर्भ-रेल्वे १९३५ से बनने लगी है। युद्ध में इसका काम उसी उत्साह से होता रहा है। अब भी हो रहा है और इसकी परिधि बढ़ती जा रही है। म नहीं जानता कि मनुष्य ने और भी कहीं इतनी विराट् कल्पना को आधार बनाकर अपनी ऐसी अतुलनीय सृष्टि की है।

मास्को देखने के लिए मैं दिन में दो बार शाम-सबेरे घूमने निकलता हूँ, मन सर्वदा उत्सुक रहता है पर शरीर साथ नहीं देता। एक दिन तो शरीर ने

बिलकुल जवाब दे दिया। सबेरे रोटी का कारखाना देखने गया था। पाँच खण्ड की ऊँचाई पर रखी हुई मशीन में आटा या मैदा गूँधा जाता है। वह अनेक प्रक्रियाओं के बीच से होता हुआ क्रमशः नीचे आता है और पहले खण्ड में लगे हुए मशीन के मुख से विभिन्न आकार की रोटियों के रूप में बाहर आ जाता है। इसके प्रत्येक खंड में रासायनिक परीक्षागार हैं; प्रत्येक खंड में वस्तु की विशुद्धता के लिए एक कठोर परीक्षा की जाती है। मानवीय खाद्य के सम्बन्ध में कितनी सतर्कता है, कारखाने में प्रतिदिन अट्ठाईस टन रोटी बनती हैं। आटा गूँधने से लगाकर गरम रोटी बनने तक का काम देखकर तथा रोटी चखकर हम लोग कारखाने के संचालक के कमरे में गये। कमरे में बैठे संचालक पैंसठ वर्ष के सीधे-सादे आदमी हैं। बचपन में अपनी माँ के साथ छोटी-सी बैकरी में काम करते थे। क्रान्ति आई और चली गई, परन्तु ये 'बैकरी' में बैठे रहे। थोड़ी-बहुत शिक्षा भी ग्रहण की। ये न कम्युनिस्ट-पार्टी में सम्मिलित हुए हैं न ट्रेड-यूनियन के सदस्य बने, फिर भी अपनी योग्यता के आधार पर इतने बड़े कारखाने के प्रधान संचालक नियुक्त हुए हैं। कम्युनिस्ट-पार्टी और ट्रेड-युनियन के सदस्य न बनकर भी ऐसा उत्तरदायित्व-पूर्ण पद पाने वाले लोग रूस में शायद और भी हों। परन्तु अनेक कारखाने देखने पर भी मुझे उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। कारखाने में साढ़े सात सौ कारीगर हैं जिनमें अधिकांश स्त्रियाँ हैं। शारीरिक श्रम बहुत कम पड़ता है, सब-कुछ मशीनें करती हैं। श्रमिकों के लिए शिशु-पालन-गृह और किंडरगार्टन स्कूल हैं। संचालक ने कितनी पुराने दिनों की कितनी ही बातें बतलाईं। उन्होंने विनोद के साथ कहा कि कारखाने को जब बड़ा रूप दिया गया और यह काम पुस्तकीय ज्ञान वाले बोलशेविकों को सौंप दिया गया तो कैसी छीछालेदर हुई, अन्त में यह काम मेरे हाथों में ही देना पड़ा। जो लोग कहते हैं कि सोवियत रूस में व्यक्ति-स्वाधीनता नहीं है वे इन संचालक महोदय को देखकर अपना भ्रम दूर कर सकते हैं। रोटी के कारखाने से हम लोग ख्यातनामा, क्रान्तिकारी कवि मायकोवस्की का निवास-स्थान देखने गए। वे तीन कमरे के एक छोटे से फ्लैट में रहते थे, बगल के दो कमरे और लेकर छोटा संग्रहालय बनाया गया, एक बड़े कमरे में कवि के काव्य पर भाषण होते हैं। आलमारियों में कवि की रचनाओं के विभिन्न भाषाओं में संस्करण सजाए गए हैं। बैठकर अध्ययन करने की भी व्यवस्था है। हमने कवि द्वारा व्यवहृत कलम, घड़ी, किताबें और कापियाँ आदि देखीं तथा उनके शयन-कक्ष में भी गये। कवि की मृत्यु के समय जो-कुछ जहाँ था वह वहीं और वैसे ही रखा हुआ है। हमारे सिवा और भी बहुत से लोग आए हुए हैं। रोज ऐसी ही भीड़ होती है। राष्ट्रीय कवि के प्रति इनमें बड़ा अनुराग है। संग्रहालय की संरक्षिका ने कवि के जीवन की सब घटनाओं का वर्णन किया।

होटल लौटकर प्रतिनिधि-मण्डल एक राष्ट्रीय चित्रशाला देखने चला गया। मेरा शरीर थक गया है और चित्र-कला के लिए मन में वैसा आकर्षण भी नहीं है इसलिए मैं नहीं गया। कभी-कभी मण्डल से अलग होकर अकेला रहना भी अच्छा लगता है। कुछ देर विश्राम करने के बाद देखा कि अपराह्न के छः बज गए हैं। बाहर धूप अब तक प्रखर है। सूर्य रात के दस बजे अस्त होंगे। उद्देश्य-हीन भ्रमण करने के लिए निकल पड़ा। दक्षिण की ओर चला और लेनिन-लायब्रेरी बाएँ हाथ को छोड़कर बराबर आगे बढ़ा। दोनों ओर दुकानें हैं और काँच की खिड़कियों में अनेक प्रकार की वस्तुएँ सजी हैं। खरीददारों की भीड़ लगी हुई है। कुछ दूर आगे बढ़ते ही एक शिशु-चिकित्सालय और अस्पताल मिल गया। भवन की गठन पुराने ढंग की है, संभवतः किसी धनी का महल था और अब अस्पताल बन गया है। माताएँ अपने बच्चे गोद में लिये जा रही हैं। कौतूहलवश मैं भी उनके साथ हो लिया। मुझे इधर-उधर देखकर एक अधेड़ महिला आगे बढ़ आई। उन्होंने स्मित मुख के साथ कुछ पूछा--जिसका एक शब्द भी मेरी समझ में नहीं आया। मैंने कहा, इण्डिस्कीडेलीगात्सी। वे मुझे एक कमरे में ले गईं, देखा दस-बारह महिला-डॉक्टर बैठी हैं। मेरा भाग्य अच्छा है जो इनमें एक अँगरेजी जानने वाली है और समाचार-पत्रों में हम लोगों की चर्चा भी पढ़ चुकी है। मेरी जिज्ञासा के उत्तर में बोलीं कि इस शिशु-अस्पताल में साढ़े सात सौ पलंग हैं, दो सौ अस्सी डॉक्टर और छः सौ नर्सें काम करती हैं, परन्तु दिन-भर नहीं, बारी-बारी से। इनके अतिरिक्त दो सौ परिचारिकाएँ भी हैं। हमारे देश की राजधानी और बृहत्तम नगरी कलकत्ते में भी ऐसा अस्पताल नहीं है। पहले सुना था कि रूस के अस्पतालों की व्यवस्था अमेरिका-जैसे धनी देश की व्यवस्था से किसी भी प्रकार कम नहीं है--आज अपनी आँखों से देख रहा हूँ। बगीचे में बच्चों के लिए झूले आदि पड़े हैं। एक बड़े कमरे में अनेक प्रकार के खिलौने, पुतलियाँ और चित्रों की किताबें हैं। बैठे-बैठे खेलने वाले खेलों की व्यवस्था भी है। दुतल्ले में सुन्दर पलंगों पर साफ-सुथरे बिस्तरे बिछे हैं, जिन पर बीमार बच्चे लेटे हैं। सुना है, ऐसे शिशु-अस्पतालों की संख्या सारे रूस में नौ हजार है। पायोनियर्स-कैम्प, किण्डर गार्टन स्कूल और शिशु-पालन-गृह में बच्चों को अच्छा मनुष्य बनाने की व्यवस्था देखी है। यहाँ रोगी बच्चों को स्वस्थ बनाने वाली निरलस सेवा देख रहा हूँ, कितनी शृंखला है, कितनी सहानुभूति है और है कितना कर्तव्य-बोध! मैंने जहाँ कहीं भी देखा है बच्चों को 'हमारे बच्चे' कहते सुना है; कोई भी 'मेरे बच्चे' नहीं कहता। इस प्रसंग में जार्जिया की राजधानी तिबलिस की एक घटना याद आ रही है। होटल के बरामदे में बैठा हूँ, फुटपाथ पर बच्चे खेल रहे हैं। तीन-चार वर्ष के एक बच्चे ने आइसक्रीम खाई है और अपना हाथ-मुँह

गन्दा कर लिया है। एक सुन्दर वेश वाली तरुणी ने अपने बेग से रूमाल निकालकर स्नेह के साथ उसका हाथ और मुँह भी पोंछ दिया। अब वह अपने मार्ग पर जा रही है। तरुणी की भाव-भंगिमा से प्रकट हो रहा है कि यह तो हमारा साधारण कर्तव्य है। कर्तव्य-पालन की इस सरल अभिव्यक्ति में सोवियत के नारी-हृदय का जो परिचय मिल रहा है वह कह रहा है कि स्वार्थ-परायण अनुदारता का मैल इनके हृदय से साफ हो गया है।

नौ

६ जुलाई की रात को हम लोगों ने मास्को से लेनिनग्राद की यात्रा की है। सबेरे ६ बजे बिछौने से उठा और सोफे पर बैठ गया। बटन दबाते ही ट्रेन का 'बैलेट' चाय दे गया। खिड़की में लगे हुए निर्मल शीशे से देख रहा हूँ, छोटे-बड़े गाँव, हरे-भरे खेत, पाइन, वार्च और पपलर की समुन्नत तरु-श्रेणी पहाड़ से सटी फैली है, कहीं विस्तृत तालाब हैं। रेलवे-लाइन के दोनों ओर मौसमी फूलों का समारोह है, जो धूप से और भी जगमगा रहा है। दस बजे गाड़ी लेनिनग्राद स्टेशन पर रुकी और हम लोग संसार के श्रेष्ठतम होटलों में से एक; अस्तेरिया में पहुँच गए। जार के समय यह होटल यूरोप और अमेरिका के धनियों का विलास-निकेतन था। अब इसमें रहने वाले बदल गए हैं परन्तु इसकी शान फीकी नहीं हुई। प्रत्येक कमरे में टेलीफोन है, रेडियो है, बैठने और सोने के लिए सुविधापूर्ण स्थान है। साथ के स्नानागार में ठण्डा और गरम जल हरदम तैयार है। होटल के चार भोजनागार और कई बड़ी-बड़ी बैठकें मूल्यवान वस्तुओं से सजी हैं। ऐसा भी समय था, जब इस होटल में एक सप्ताह मौज के साथ रहने का खर्च चुकाने में हमारे देश के छोटे-मोटे जमींदारों का खजाना खाली हो सकता था। इसकी नृत्य-शाला, साम्राज्ञियों और कुलीना विलासिनियों के कल हास और चटुलास्य से मुखरित होती थी। होटल के विनोदी मैनेजर ने बताया कि पिछले युद्ध में जर्मन जब नगर से २० मील दूर पहुँच गए तब मुझे एक हुक्मनामा मिला। उस पर स्वयं हिटलर ने हस्ताक्षर किये थे और लिखा था,"विजयोत्सव के उपलक्ष में मैं एक भोज दूँगा। तुम पाँच सौ आदमियों के खाने और पीने की चीजों का प्रबन्ध करो।" कहना व्यर्थ है कि हुक्म की तामील करने का समय ही नहीं आया। नगर तीन वर्ष तक प्रायः घिरा रहा था। जलधि-तरंगों की भाँति तूफानी आक्रमण करने वाली नात्सी सेना सर्वसाधारण के प्रतिरोध की पाषाण-प्राचीर पर बारम्बार सिर पटककर लौट गई। नगर में बिजली, पानी और ईंधन न रह गया था; लोगों को दिन-भर में रोटी का टुकड़ा भी न मिलता था। परन्तु जनता और सेना का मौत को भी चुनौती देने वाला संकल्प अडिग रहा। नात्सी-आक्रमण के क्षत-चिह्न प्रायः लुप्त हो चुके हैं।

पीटर दी ग्रेट द्वारा बसाई गई 'सेनपीट्स वर्ग' रूपसी नगरी है। नेवा नदी के दोनों किनारों और भूमि-दासों की अस्थि-मज्जा की नींव पर यह महानगरी ढाई सौ वर्ष में निर्मित हुई है। रूसी सम्राटों के प्रताप की प्रखर रश्मियों से शोषित जनता का अर्थ राज-भण्डार में गया हुआ था वहाँ से मूसलाधार बनकर इस नगरी के लिए बरसा है। कितने ही प्रासाद, गिरिजे और उद्यान उन दिनों के साम्राज्य

की महिमा का अब तक स्मरण कराते हैं। यहीं से रूसी साम्राज्य प्रशान्त महासागर के पश्चिमी तट से लगाकर हिमालय-हिन्दूकुश के उत्तरी भाग तक फैला था। स्वेच्छाचारी शासन के इसी सुदृढ़ दुर्ग में क्रान्ति की वह बारूद भी बिछी थी जो २०वीं शताब्दी में प्रचण्ड विस्फोट के रूप में फट पड़ने की प्रतीक्षा कर रही थी।

लेनिनग्राद सोवियत रूस की दूसरी महा नगरी है और क्रोनस्टाडर से सुरक्षित है। क्रोनस्टाडर बाल्टिक समुद्र-पथ में यूरोप के प्रवेश-द्वार पर पहरेदार नौ-दुर्ग है। होटल अस्तोरिया के सामने बगीचा है, दक्षिण में विख्यात गिरिजा और बाएँ पीटर दी ग्रेट की अश्वारूढ़ विराट् मूर्ति है। सायंकाल ५ बजे हम लोग शहर देखने निकले। सड़कें चौड़ी हैं। कहीं-कहीं छोटी खाड़ियाँ हैं; जिन पर पुल बने हैं। दोनों ओर बड़े-बड़े प्रासाद हैं। अब इन प्रासादों में फौजी कार्यालय हैं या श्रमिक रहते हैं। स्क्वायर-उद्यान देखकर हम लोग जारोंके विख्यात 'विण्टर पैलेस' के सामने पहुँचे। प्रासाद के सामने पत्थर का विशाल चत्वर है, चत्वर के बीच में ग्रेण्टी पत्थर का वर्तुलाकार ऊँचा विजय-स्तम्भ है। यहीं पर एक दिन साम्राज्यवाद के पहरेदार कुत्तों, कजाक अश्वारोही सैनिकों की परेड होती थी। यहीं वह जनता जमा होती थी जिसको स्वर्गीय पिता के प्रतिनिधि 'लिटिल फादर' जार-प्रासाद के अलिन्द मे दर्शन देकर कृतार्थ करते थे। इसी स्थान पर उन्नीस सौ पाँच में निहत्थी और भूखी जनता की प्रार्थना पर जार के सैनिकों ने गोलियों की वर्षा की थी।

विण्टर-पैलेस के सामने वाला यह चत्वर रूस का जलियानवाला बाग है। इतिहास की दोनों रोमांचकर घटनाओं में आश्चर्यजनक साम्य और साम्राज्यवादी कूटनीति का एक ही खेल दीख पड़ता है। १९१९ में ब्रिटेन की साम्राज्य-नीति के विरुद्ध पंजाब का असंतोष विद्रोह की सीमा पर पहुँचा तब जनता को शिक्षा देने के लिए अधिकारियों ने षड्यन्त्र किया। लाला हंसराज नामक पुलिस के गुप्तचर ने जलियानवाला बाग में एक सभा बुलाई। उस दिन बैसाखी पूर्णिमा का मेला भी था। दीवारों से घिरे हुए बाग में आने-जाने के लिए प्रायः एक ही मार्ग था। जनरल डायर ने उस मार्ग को रोक लिया था और निहत्थे आबाल-वृद्ध-वनिता पर अकस्मात् गोलियाँ बरसाकर हजारों व्यक्तियों को हताहत कर डाला।

१९०५ में भी ऐसी ही घटना हुई थी। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी एक ही जैसी है। फ्रांस की क्रांति और रूसो तथा वाल्तेयर की विचार-धारा ने रूस के कुलीन वर्ग पर काफी प्रभाव डाला था और उसमें राष्ट्रीयता तथा वैधानिक सरकार स्थापित करने की कल्पना-जल्पना पहले ही प्रारंभ हो चुकी थी। इसी आंदोलन से ही उन क्रांतिकारी दलों की सृष्टि हुई थी जो गुप्त रूप से काम करते थे और आवश्यकता पड़ने पर हत्या भी कर डालते थे। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में यह असंतोष किसान-

मजदूर वर्ग में भी दीख पड़ा। रूस-जापान-युद्ध में जब जार पराजित हो गए और उनकी सैनिक-शक्ति दुर्बल पड़ गई तब यह असंतोष सेण्टपीट्सबर्ग के मजदूरों में हड़ताल के रूप में व्यापक हो गया। विद्रोह की आशंका से जार-तंत्र ने हत्या और निर्वासन का भय दिखाकर अपना शासन किसी प्रकार स्थिर रखने का प्रयास किया, परन्तु काम पूरा होते न देख कर पूरी शिक्षा देने का प्रबन्ध किया गया। पुलिस के बड़े अधिकारी और जार की नाक के बाल ट्रिपभ ने जाल फैलाया। फादर गोपेन नामक एक पादरी पुलिस का गुप्तचर और 'कारखाना-मजदूर-परिषद्' का नेता था। इस गुप्तचर ने एक प्रार्थना-पत्र लिखा और हड़ताली मजदूरों से कहा कि आओ जुलूस बनाकर हम लोग जार के पास चलें; वे अपने अफसरों के अत्याचारों का समुचित प्रबन्ध करेंगे। डेढ़ लाख मजदूर गोपेन के पीछे चले। प्रार्थना-पत्र की भाषा से ही स्पष्ट हो जाता है कि वह किसी क्रांतिकारी की रचना नहीं थी, भूखे-नंगे मजदूरों को बध-भूमि तक ले जाने के लिए पुलिस के गुप्तचर ने जाल फैलाया था।

मजदूरों के प्रार्थना-पत्र में लिखा गया था—"हम सेण्टपीट्सबर्ग के मजदूर आपकी शरण में आये हैं। हम अभागे और क्रीत दास हैं,स्वेच्छाचार और अत्याचार ने हमारी कमर तोड़ दी है। हमने हड़ताल की है, परन्तु मालिकों से हम यही भीख माँगते थे कि हमें इतना तो दे दिया जाय जिससे हम बाल-बच्चों को लेकर जीवित रह सकें। मालिकों ने हमारी यह छोटी-सी बात भी नहीं सुनी। उनकी समझ से हम मनुष्य ही नहीं हैं। आपके कर्मचारी भी मालिकों की हठ के साथ मिल गए हैं और हमें दास बनाये रखने के लिए ही अपनी शक्ति लगा रहे हैं। प्रभु ! आप अपनी असहाय और पीड़ित प्रजा की सहायता करें, अपनी प्रजा की प्रार्थना स्वीकार कर लें। यदि आपकी दया न हुई तो यहीं मर जाने के सिवा हमारे लिए और कोई उपाय नहीं है।"

'दयालु लिटिल फादर' जार ने दर्शन नहीं दिये, परन्तु मजदूरों की दूसरी प्रार्थना स्वीकार कर ली। प्रासाद के बुर्ज से राइफलों ने ओलों की भाँति गोलियाँ बरसाईं। हताहतों के आर्त नाद से भरे हुए इस चत्वर पर अश्वारोही कजाक सैनिकों ने हिंसा और हत्या का महोत्सव मनाया और रक्त की गंगा बहा दी। दूसरे दिन पुलिस-रिपोर्ट में प्रकाशित हुआ कि एक हजार हत और दो हजार आहत हुए हैं। गैर-सरकारी हिसाब में हताहतों की संख्या ६ हजार से ऊपर पहुँच गई थी। रोटियों के बदले गोलियाँ मिलीं। १६०५ की जनवरी इतिहास में 'रक्त-रंजित' रविवार के नाम से लिखी गई।

यूरोप के तत्कालीन राजनैतिक क्षेत्रों में इतने बड़े पैशाचिक हत्या-काण्ड से कोई हलचल नहीं हुई। पेरिस के प्रगतिशील बुद्धिजीवी ही इसके विरुद्ध बोले। उन के प्रयत्न से फ्रांस में कई स्थानों पर प्रतिवाद-सभाएँ हुईं। १६०५ की ३० जनवरी

पैरिस की एक जन-सभा में विख्यात साहित्यकार और मनीषी अनातोले फ्रांस ने वज्र-गंभीर स्वर में कहा—"जार ने भूखे नर-नारियों की हत्या की है, वे रोटी माँग रहे थे और उन्हें गोलियाँ दी गईं। जार ने जार की ही हत्या की है। निर्दोषों के जिस रक्त से नेवा नदी का जल लाल हुआ है, उसके प्रत्येक बिंदु से लाखों मनुष्य उत्पन्न होंगे और इस हत्याकांड का बदला चुकायेंगे। जार ने विद्रोह की जो अग्नि प्रज्वलित की है वह उनके लिए ही चिता बन जायगी। निकोलस अलैक्जेंडर के दिन समाप्त हो गए, इतिहास में उसकी कलंकित स्मृति ही रह जायगी। जार गवर्नमेण्ट मजदूरों की हत्या कर रही है, शिक्षित युवकों को जेलों में सड़ा रही है और साइवेरिया में गल जाने के लिए निर्वासित कर रही है। मैं देख रहा हूँ कि जो विद्रोह आरंभ हुआ है वह अब रुक नहीं सकता। आशंका इतनी ही है कि यह 'रक्त-रंजित' मार्ग कहीं लम्बा न हो जाय। यह दृश्य दुखद होते हुए भी गरिमा-पूर्ण है। मृत्यु के इस अभिसार में छात्र, अध्यापक और साहित्यिक आदि बुद्धिजीवी भी मजदूरों के साथ सम्मिलित हो गए हैं। एक पीड़ित राष्ट्र का मर्मबेधी क्रन्दन विशाल साम्राज्य के विस्तार से ऊपर उठकर आकाश में प्रतिध्वनित हो रहा है। जार की नृशंस पाशविकता ने आज रूसियों के सत्यानुराग और स्थिरता के सामने खड़े होने का दुस्साहस किया है। वह दिन दूर नहीं हैं जब अत्याचार ही अत्याचारी को खा जायगा।"

अनातोले फ्रांस ने रूस के सर्वस्व वंचितों (प्रोलेटेरियट) की जो विजय-कामना की थी, वह लेनिन और स्तालिन द्वारा संचालित बोल्शेविक पार्टी ने बारह वर्ष में ही सफल कर दी, परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय मैत्री और विश्व-शांति के अग्रदूत अनातोले फ्रांस वह शुभ दिन देखने के पहले ही प्राण त्याग चुके थे।

विण्टर पैलेस के चबूतरे से आगे बढ़कर हम लोग विख्यात कवि पुश्किन के निवास-स्थान पर पहुँचे। अब यह घर एक संग्रहालय है जिसमें पिछली शताब्दी के खाते-पीते मध्यम श्रेणी के कुलीन परिवार की स्मृतियाँ सुरक्षित हैं। पुश्किन के चित्र, उनके लेखों की पाण्डुलिपियाँ, उनकी पुस्तकों के विभिन्न संस्करण और उनके व्यवहार में आने वाली विभिन्न वस्तुएँ सजी हुई रखी हैं, लाइब्रेरी भी ज्यों-की-त्यों है। पुश्किन तत्कालीन प्रथा के अनुसार शत्रु के साथ द्वै-रथ-युद्ध में गुरुतर रूप से आहत होकर मरे थे, उनकी अंतिम शैया भी देखी। पुश्किन सोवियत रूस के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि थे। नई राजधानी पीट्सबर्ग के लिए एक कविता में उन्होंने लिखा था—"तुम नव-वधू के रूप, यौवन और अलंकारों से भूषित हो, तुम्हारी चमक-दमक से मास्को प्रौढ़ा सास की भाँति म्लान हो गयो है।"

नेवा नदी के तट पर चल रहा हूँ। स्रोत मन्थर है और जल गहरा तथा नीला है। मोटर, बोट और स्टीमर आ-जा रहे हैं। दोनों किनारों पर कारखाने

और मकान है। एक उद्यान में 'पीटर द्री ग्रेट' की अश्वारोही मूर्ति है। मूर्ति का मुख नेवा नदी की ओर है और पीटर पैरों के नीचे पड़े हुए एक साँप या ड्रागन को बर्छे से छेद रहे हैं। कलाकार ने वीरता मूर्तिमान् कर दी है। शहर भर में और किसी जार की मूर्ति नहीं है। जार निकोलस के सिंहासन छोड़ने पर केरेंस्की सरकार के समय में बोल्शेविकों से पहले के क्रांतिकारियों ने ये सब तोड़ डालीं।

धीरे-धीरे चलकर हम लोगों ने जार के दुर्ग में प्रवेश किया। दो-तीन बड़े-बड़े गिरजे हैं। एक गिरजे के प्रांगण में काले और सफेद संगमर्मर की बनी हुई जार और जरीना की समाधियाँ हैं। दीवारों पर बाइबिल की कहानियों के चित्र बने हुए हैं। गिरजों में प्रार्थना करने वाले नर-नारियों की भीड़ अब नहीं रहती; कौतूहली जनता संग्रहालय देखने आती है। दुर्ग में पुराना कारागार भी है, कारागार की कोठरियाँ क्या भयंकर अन्धकूप हैं, बरामदे में पहरा देने वालों के जूतों की प्रतिध्वनि ही इनमें सुन पड़ती थी। कलकत्ते की प्रेसीडेंसी जेल की चालीस डिगरी वाली कोठरियाँ इनकी तुलना में बहुत सुखद हैं, प्रत्येक कोठरी साम्राज्यवादी प्रतिहिंसा की निर्जीव निष्ठुरता जान पड़ती है। इनमें कितने ही क्रांतिकारी पागल हो गए हैं, कितनों ही ने आत्महत्याएँ की हैं; कितने ही प्रतिभाशाली युवकों के सुगठित शरीर इस निरानन्द नगरी में जरा से जीर्ण हो गए हैं। लेनिन के बड़े भाई १९ वर्षीय युवक उलियानव फाँसी पर लटकाने से पहले जिस कोठरी में रक्खे गए थे, गोर्की तथा 'प्राक् बोल्शेविक' युग के अन्य क्रांतिकारी जिन कोठरियों में रहे थे वे सब चिह्नित की गई हैं। १९०४-६ के विद्रोह-काल में इस कारागार में जो वीभत्स और नारकीय अत्याचार हुए हैं, उनकी सजीव गवाही देनेवाले जंग लगे हुए कुछ पीड़ा-दायक यन्त्र देख रहे हैं। हृदय विषाद से भर गया है। अपने देश की इलिसियम रोड (अब लार्ड सिंह रोड) पर बने हुए खुफिया पुलिस के गढ़ की याद आ रही है। पीड़ा पहुँचाकर पेट की बात निकाल लेने की उस्तादी में हमारे देश की खुफिया पुलिस वाले रूसी पुलिस से किसी भी प्रकार कम नहीं थे। युवावस्था में मैंने और मेरे कितने ही मित्रों ने खुफिया पुलिस के मीठे-मुलायम व्यवहार का स्वाद पाया है! अन्तर इतना ही है कि सोवियत सरकार ने उन लोगों को झाड़ू से बिदा कर दिया है और हमारी सरकार ने उन सब क्षण-जन्मा महापुरुषों को प्रमोशन देकर पुलिस-विभाग के शिखर पर बिठा दिया है। रवीन्द्रनाथ ने बड़े दुःख के साथ कहा था—"जो लोग स्वार्थ-परायण और बेईमान हैं, जो उदासीन और निश्चेष्ट हैं आज की गुप्त व्यवस्था में उनकी ही जीवन-यात्रा सबसे अधिक निरापद है। उनकी ही उन्नति और पुरस्कार के मार्ग में सबसे कम बाधाएँ हैं।"

आठ जुलाई रविवार है। सवेरा हो गया है परन्तु आकाश मेघों से ढका है। हम लोग बूँदा-बाँदी में ही 'स्मोलिनी इन्स्टीटयूट' देखने के लिए निकल पड़े हैं।

यह पहले बड़े घरों की लड़कियों का आवासिक विद्यालय था। १९१७ के विप्लव की सफलता के पहले बोल्शेविकों का मोर्चा बन गया था। इस प्रधान कार्यालय से ही लेनिन और स्तालिन ने विद्रोही सैनिकों का संगठन किया था और ७ नवम्बर को प्रायः बिना रक्त-पात के ही 'पेट्रोग्राद' पर अधिकार जमा लिया था। ७ नवम्बर की रात को पौने ग्यारह बजे सोवियत सोशलिस्ट गवर्नमेण्ट इतिहास के रंगमंच पर आविर्भूत हुई थी।

प्रकाण्ड भवन के अधिकांश भाग में फौजी दफ़्तर हैं, चारों ओर पहरे की कड़ी व्यवस्था है। दुतल्ले के कुछ कमरों में संग्रहालय हैं, इनमें लेनिन का छोटा-सा शयन-कक्ष भी है। साधारण-सी चारपाई, बिछौना और कुर्सियाँ रखी हैं। जिस कमरे में सैनिक मन्त्रणा होती थी, उसमें कितने ही ऐतिहासिक कागज-पत्र और चित्र हैं। लेनिन यहीं पहली बोल्शेविक कांग्रेस में क्रांतिकारी सैनिकों के सामने प्रकट हुए थे। दीवार पर उनकी ४७ वर्ष की अवस्था वाला वह तैल-चित्र टँगा है—सुगठित शरीर से दृढ़ता टपक रही है, उज्ज्वल और अन्तर्भेदी दृष्टि से तेजस्वी जीवन की चिनगारियाँ निकल रही हैं।

बोल्शेविक क्रान्ति की घटनाओं पर विचार करते-करते हम लोग शहर से बाहर आ गए हैं। सूर्य ने मेघों का घूँघट हटा दिया है, मद्य-स्नात वृक्षों के पत्ते चमकने लगे हैं। प्रशस्त मार्ग के दोनों ओर फूलों का रंगीन समारोह हो रहा है, मैदान में नये बने हुए भवन खड़े हैं, उनकी बगल में जर्मनों के आक्रमण से विध्वस्त और परित्यक्त गृह भी दीख पड़ते हैं। हम लोगों ने पुश्किन-ग्राम में प्रवेश किया। इस पर जर्मनों ने कब्जा जमा लिया था। दोनों ओर के गोलों से अधिकांश घर टूट गए थे, अब और भी सुन्दर भवन और उद्यान बना लिये गए हैं। यहाँ के ज़ारकालीन प्रासाद में जर्मन सैनिक रहते थे, पलायन करते समय वे प्रासाद की दुर्दशा कर गए हैं, शिल्प-कला के कितने ही सुन्दर निदर्शन वे लूट ले गए हैं, कितने ही नष्ट कर गए हैं। प्रासाद खड़ा रह गया है जिसकी अब धीरे-धीरे मरम्मत हो रही है। एक अंश की मरम्मत हो चुकी है। उसमें पुश्किन-संग्रहालय है। पुराने चित्रों और शिल्प-कला के नमूनों का संग्रह किया गया है। नवीन रूस की अखण्ड जीवन-शक्ति का प्राचुर्य और नवल सृष्टि का आनन्द यहाँ नगर-निर्माण की ललित-योजना में प्रकट हो रहा है।

पुश्किन से हम लोग लेनिनग्राद लौट आए हैं। सूर्य का प्रकाश म्लान हो रहा है, नेवा नदी के गहरे-नीले जल पर उसकी लालिमा काँप रही है। नदी के तट पर क्रूजर 'अरोरा' या 'आबरोरा' लंगर डाले खड़ा है। इसी रणतरी के नव सैनिकों ने सबसे पहले विद्रोह की घोषणा की थी, बोल्शेविकों का साथ दिया था और अपनी तोपों के मुँह विण्टर पैलेस के ऊपर जमा दिये थे। अरोरा की तोपों के गर्जन ने ही केरेंस्की-पंथियों को भगा दिया था। उस नव विद्रोह के एक जीवित प्रौढ़ अब इसके अध्यक्ष हैं,

उन्होंने हमें घुमा-फिराकर पूरी रणतरी दिखाई और उन दिनों की कहानियाँ सुनाईं। 'अरोरा' सन् १९०० में बना है, भार में ६००५ सौ टन है, दोनों बगलों में और सामने की ओर कितनी ही तोपें लगी हैं,अब इसमें शिक्षार्थी नव सैनिक रहते हैं।

कार्यक्रम के अनुसार हम लोग सवेरे से शाम तक चित्रशाला, शिशु-सदन, शिक्षागार और संस्कृति-भवन आदि देखते हैं फिर थियेटर, बॉ.ले, नृत्य और 'पापेट' थियेटर आदि। ग्रीष्म-काल में यहाँ दिन-रात का व्यवधान नहीं होता, रात भी शुभ्र और रौद्रमयी होती है। पापिट या पुतलियों का थियेटर हमारे लिए एक बिलकुल नयी चीज है। इसमें एक कौतूहल-वर्धक और संयोगान्तक प्रेम-कहानी होती है, पुतलियाँ मनुष्यों की भाँति बातें करती हैं, अभिनय करती हैं, जीवन में ऐसा तमाशा और कहीं नहीं देखा।

विख्यात विण्टर पैलेस में प्रवेश किया। विपुलता, विशालता, भास्कर्य, स्थापत्य और चित्रांकन की दृष्टि से संसार का कोई प्रासाद इसकी समता कर सकता है या नहीं, मैं नहीं जानता। रूस की दृष्टि से फ्रांसीसी सम्राटों के वर्षा कालीन प्रासाद की पर्याप्त ख्याति है, परन्तु दोनों की प्रकृति में बहुत बड़ा अन्तर है। विण्टर पैलेस का रूप सुकुमार पुष्प की भाँति कमनीय नहीं, ऐश्वर्य और प्रताप की उग्रता से प्रदीप्त है। फ्रांसीसी, इटैलियन, डेनिस और जर्मन-शिल्पियों की तीन शताब्दियों की सौंदर्य-सृष्टि इस प्रासाद के प्रत्येक कक्ष, अलिन्द और चत्वर में स्थिर विद्युत् की भाँति अचपल हो गई है।

प्रासाद के अधिकांश भाग अर्थात् ३४० कमरों में संग्रहालय हैं। पूर्व और पश्चिम के चित्रों, पुरानी मूर्तियों, अस्त्रों-शस्त्रों और वसनों-भूषणों से सुसज्जित यह 'जादू घर' अब आर्मीटास या हार्मिटेज के नाम से परिचित है। इसे साधारण दृष्टि से देखने के लिए भी ५-७ दिन का समय चाहिए। तीन-चार घंटे में जो-कुछ देख सका हूँ उसमें ग्रीक और रोमन भास्कर्य के निदर्शनों का प्रचुर संग्रह देखकर विस्मित हुआ हूँ।

लेनिनग्राद के जन-साधारण की जीवन-यात्रा, दुकान, व्यापार, कल-कारखाने और अस्पताल आदि सब मास्को-जैसे ही हैं। मास्को की भाँति ही यह शहर फैल रहा है, नई-नई अट्टालिकाएँ बन रही हैं। दस जुलाई की संध्या को स्थानीय लेखक और पत्रकार-संघ के एक समारोह ने हमें विदा दी। रात की गाड़ी से हम लोग लेनिनग्राद से रवाना हो गए।

दस

मास्को लौटकर हम लोग शाम को भारतीय दूतावास गये और श्रीयुत राधाकृष्णन् से भेंट की। मास्को की पण्डित-मण्डली में इनका विशेष सम्मान है। सोवियत के मंत्री और राजनीतिज्ञ भी आपके प्रति श्रद्धा रखते हैं। राधाकृष्णन् ने कुछ घटनाओं की चर्चा की, जिनसे मालूम हुआ कि मेल-मिलाप के समय वे यहाँ काफी खुली बातें कर लेते हैं। हमारे अनुभव सुनकर सर राधाकृष्णन् कहने लगे कि इन लोगों का शांति-आंदोलन लोक-दिखावा नहीं है। ये लोग सचमुच शांति चाहते हैं। युद्ध के भीषण परिणाम इन्होंने देखे हैं। देख रहे हो कि पुनर्गठन के काम में कैसे जुटे हैं। इनकी आर्थिक व्यवस्था पर इनके समाज का जीवन निर्भर है। आर्थिक उन्नति और परिवर्तन के साथ-साथ समाज का रूप भी बदल रहा है। उनका लोक-व्यवहार कहीं बिलकुल बँधा हुआ नहीं है। ये भूल स्वीकार करते हैं और उसमें सुधार कर लेते हैं। विदेशियों की दृष्टि में इनके समाज की यह गति सहसा नहीं जँचती। रूसी पुरुषों के साथ स्त्रियों के समानाधिकार और निःसंकोच व्यवहार की चर्चा उठते ही, राधाकृष्णन् कहने लगे कि शिक्षा के विस्तार और स्त्रियों को उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य सौंप देने से ही यह संभव हुआ है। तुमने देखा है, ये प्रगल्भा नहीं हैं, इनका रूप-रंग और हाव-भाव संयत है। राधाकृष्णन् ने आधुनिक रूसी तरुणी की उन्मुक्त प्रशंसा की।

तरुणी ही नहीं, आज का तरुण भी युद्ध की आग में तपकर इस्पात बन गया है। सामाजिक चेतना और परस्पर के सुविचार इनके चरित्र का आधार हैं। एक दिन लेनिन-संग्रहालय की सीढ़ियों पर चढ़ रहा था, कई घण्टे घूमकर थक गया था। संभवतः यही देखकर दो लड़कियाँ मेरे इधर-उधर आ गईं और बाहुओं में हाथ लगाकर मुझे सहायता देने लगीं। मैंने संकोच के साथ कहा 'नियेत्-नियेत्' अर्थात् 'नहीं-नहीं।' अपने दुभाषिये से कहलवाया कि मेरी आयु तो हो गई है किंतु इतना बूढ़ा नहीं हुआ कि सहायता की आवश्यकता पड़े। वे सुनकर हँसने लगीं परंतु सहायता देना बन्द नहीं किया। बाद में मैंने दुभाषिये द्वारा पूछा—"विदेशी होने के कारण ही मुझे यह सौजन्य प्राप्त हुआ है ?" उन्होंने कहा—"नहीं, बूढ़ों के प्रति सम्मान-पूर्ण व्यवहार करने की शिक्षा हमें बचपन से ही मिली है। वयस्कों के साथ रूक्ष व्यवहार करना अभद्रता है।" इस घटना के बाद मैंने देखा है कि ट्राम, बस या दुकानों में लगे क्यू में ये लोग बूढ़े और बूढ़ियों को पहले स्थान दे देते हैं। ट्राम या बस में बूढ़ों के लिए बैठने का स्थान खाली कर देते हैं। और एक दिन की बात है। सांस्कृतिक उद्यान में यूक्रेन के कुटीर-शिल्प की प्रदर्शिनी देखकर मैं धूम्र-पान

करने के लिए बगीचे की एक बेंच पर गया था। मेरे सामने की बेंच पर एक युवक बैठा हुआ धूम्र-पान कर रहा था, एक वृद्ध आया और उसकी बगल में बैठ गया। युवक ने तुरन्त सिगरेट फेंक दी। वह जब उठकर जाने लगा तो मैंने संकेत से अपने पास बुलाया, वह आया और लजाता हुआ-सा मेरे सामने खड़ा हो गया। मैंने पूछा—"तुमने सिगरेट क्यों फेंक दी।"

"उन्हें असुविधा हो सकती थी।"

"तुम पूछ भी तो सकते थे।"

"पूछने पर वे बताते नहीं। चुपचाप सह लेते इसीलिए फेंक दी।"

समझ गया कि बूढ़ों के प्रति इनकी श्रद्धा स्वभाव बन गई है, यह भी देखा है कि बूढ़ी-बूढ़ों को श्रम-साध्य कार्यों में नहीं लगाते, दफ्तरों, कारखानों, रेलवे-स्टेशनों और हवाई अड्डों पर देखा है कि दरवाजों पर पहरा देने और विश्रामागारों में देख-भाल करने के काम वयस्क ही करते हैं। होटलों के छोटे-मोटे कामों में भी, आश्चर्य है कि इसी देश के विरुद्ध ऐसी बातें सुनी जाती हैं कि यहाँ नर-नारियों से क्रीत-दासों की तरह सिरतोड़ परिश्रम लिया जाता है।

मास्को में एक 'हाउस आफ रेस्ट' या वानप्रस्थियों का विश्रामागार देखने गया था। विश्रामागार में ३०० व्यक्तियों के रहने का प्रबन्ध है, परन्तु रहते केवल ५०-६० हैं। अध्यक्ष ने बताया कि पेंशन लेने के बाद अधिकांश माता-पिता अपने बच्चों की ही गृहस्थी में रम जाते हैं, जिनके कोई नहीं होता प्रायः वही यहाँ आते हैं। यहाँ आकर रहने वाले लोग भी बेकार नहीं बैठते, बल्कि यथासाध्य परिश्रम भी करते हैं। ऐसे लोग भी हैं जो लिखने-पढ़ने या चौसर आदि खेलने में ही समय व्यतीत करते हैं। माता-पिता को साथ रखकर गृहस्थी चलाने का सिलसिला यूरोपीय समाज के प्रतिकूल है, यहाँ के समाज की आर्थिक नीति के कारण शायद यह संभव हुआ है। हमने विवाहित भाई-बहनों को एक साथ रहते हुए भी देखा है और अपने देश के परम उपहास-भाजन 'घरजमाई' भी यहाँ मिले हैं, परन्तु वे श्वसुर पर आश्रित नहीं रहते, स्वयं उपार्जन करते हैं।

प्रवीण वयस्कों के प्रति श्रद्धा-सम्मान की भावना हमारे देश में भी थी, गाँवों में अब भी कुछ है परन्तु कलकत्ते में युद्धोत्तर नागरिक सभ्यता में इसका कोई चिह्न नहीं रह गया है। सड़क पर, ट्राम, बस या ट्रेन में अथवा बाजार में परस्पर शिष्टाचार प्रदर्शित करने की प्रथा ही उठ गई है। ट्रामों या बसों में दुर्बल वृद्धों के बैठने के लिए कोई स्थान खाली नहीं करता, अपना मामूली आराम छोड़कर भद्रता दिखाने का विलास हमारे यहाँ नहीं होता।

दूसरे के परिश्रम पर जीने वालों का वर्ग जिस देश से विलुप्त हो गया है, समाज के जन-साधारण को जोतकर मुनाफे के पहाड़ खड़े करने और संचित धन को

अपने व्यक्तिगत भोग अथवा और भी अधिक मुनाफा कमाने की चेष्टा में लगाने का सुयोग जहाँ नहीं है,वहाँ मानव-प्रकृति में परिवर्तन होना अनिवार्य है। यह परिवर्तन मानव-मात्र के समानाधिकार के ज्ञान से आया है। एक नई अर्थ-व्यवस्था के आधार पर इस देश का सामाजिक जीवन बड़ी द्रुत-गति से परिवर्तित हो रहा है। आज निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि भविष्य में इस समाज का क्या स्वरूप होगा, परन्तु सर्वसाधारण के लिए शिक्षा का द्वार इन लोगों ने जिस प्रकार उन्मुक्त कर दिया है उससे मनुष्यत्व की मर्यादा में वृद्धि और उत्कर्ष अनिवार्य है। वंचकों और वंचितों,शोषकों और शोषितों, सुविधा-भोगियों और अधिकार-रहितों के लोभ और क्षोभ का द्वन्द्व, वर्ग-विद्वेष की जिस अवस्था में समाज के शरीर में अनेक प्रकार से विष उत्पन्न करता है, ये लोग उस अवस्था को पीछे छोड़ आए हैं। इसके लिए इन्हें काफी मूल्य भी देना पड़ा है। व्यक्तिगत स्वाधीनता समष्टि के कल्याणार्थ संयत करना पड़ा है। आज के रूसी समाज का स्वरूप कहता है कि लेनिन स्तालिन-वादियों ने जन-साधारण पर ऊपर से कोई चीज नहीं थोपी है, अपितु समाज के संपूर्ण अन्तर को देश का सौभाग्य बनाने के लिए पंचवर्षीय योजना के द्वारा उद्यत कर दिया है। लक्ष्य के संबंध में एक स्पष्ट धारणा न हो तो नये समाज का निर्माण नहीं किया जा सकता। समाजवादी चेतना से जागृत रूसी जनता के आत्म-विश्वास ने इनका दृष्टिकोण बदल दिया है; इसीलिए जाति और वर्ण के विचार से परे मनुष्य-मात्र इनके लिए आत्मीय बन गया है। लोक-व्यवहार में वैषम्य नहीं रहा।

ग्यारह

१२ जुलाई को सबेरे हम लोगों ने मास्को हवाई-अड्डे से स्तालिनग्राद की यात्रा की। ६ बजे हवाई जहाज वरोनेत्स में रुका, हवाई अड्डे के भोजनागार में चाय पीते समय हमने दुतल्ले की खिड़की से युद्ध-विध्वस्त नगर पर दृष्टि डाली, कितनी ही शुभ्र और समुन्नत अट्टालिकाएँ फिर मस्तक उठाकर खड़ी हो गई हैं।

हवाई जहाज़ नीचे होकर उड़ रहा है, डन नदी के दोनों किनारों पर विस्तृत सहकारी कृषि-क्षेत्र, छोटे-छोटे जंगल, बंजर भूमि और छोटे-बड़े गाँव दीख पड़ते हैं। साढ़े ग्यारह बजे हम लोग स्तालिनग्राद में उतरे। प्रचण्ड मध्याह्न, चिलचिलाती धूप। मोटर पर बैठकर शहर की ओर अग्रसर हुए, दोनों ओर कटीले तारों से घिरे हुए ध्वंस-स्तूप हैं, परित्यक्त परिखा की खाई है, उन्हीं के बीच में नये नगर का निर्माण भी हो रहा है। सड़क के दोनों ओर नगर का रूप सुन्दर नहीं है। चौड़ी और चमकीली सड़क पर चलकर हम लोग नगर के केन्द्र में पहुँचे और एक मध्यम श्रेणी के होटल में ठहर गए। बंगाल-जैसी ही गर्मी है, अँगरेजी पोशाक उतारकर स्नान किया और धोती-कुर्ता पहना तो स्वर्ग-सुख प्राप्त हुआ। लेनिनग्राद से स्तालिनग्राद जैसे दार्जिलिंग से ग्रीष्म-काल के कलकत्ते में आ गए हों।

होटल की खिड़की से देख रहा हूँ, वोल्गा नदी कुछ दूर पर बह रही है। सामने छः खण्ड का एक प्रकाण्ड भवन है, जिसमें सहकारी-समिति का बाजार है। यत्र-तत्र बड़े-बड़े भवनों के ध्वंस-स्तूप पड़े हैं, और उन्हीं की बगल में नये भवन बन रहे हैं—महानाश की छाती पर ही नवल सृष्टि रूप ग्रहण कर रही है। रौद्र-तप्त नगरी के वक्ष पर प्रलय और सृजन का यह महा रहस्य विभ्रांतकारी मरीचिका-जैसा जान पड़ा। मन-ही-मन में प्रणाम करके मैंने कहा, "स्तालिनग्राद ! तुम आज मास्को या लेनिनग्राद-जैसी स्वरूपवती नगरी नहीं हो। तुम वीर्यवती हो। नात्सी दानव का दलन करने वाली तुम्हारी भीमा-भैरवी मूर्ति आज संयत है। लाखों नर-मुण्डों के स्तूप पर तुम लक्ष्मी बनकर महिमामयी रानी की भाँति नई सृष्टि की साधना में संलग्न हो गई हो।"

सन् १६१८ की बात है। जार-काल की जारित्सिन नाम से विख्यात नगरी क्रान्ति-विरोधी सेनापतियों द्वारा घेर ली गई थी, विदेशी सहायता उनकी पीठ पर थी, परिस्थिति विकट हो चुकी थी, लाल पल्टन का व्यूह छिन्न-भिन्न था। उत्तर काकेशिया से गेहूँ ले जाने वाले मार्ग पर क्रान्ति-विरोधी कजाक-सेना ने अधिकार कर लिया था। ऐसे संकट में लेनिन के आदेश से स्तालिन ने जारित्सिन को अवरोध से मुक्त करने का भार ग्रहण किया। राजनीतिक और क्रान्तिकारी नेता स्तालिन ने

सैनिक नेतृत्व में भी अपनी प्रतिभा और कर्म-शक्ति का परिचय दिया। जारित्सिन बन्दर अवरोध से मुक्त हो गया। स्तालिन के उत्साह से प्रेरित लाल फौज ने जनरल क्रासनफ की सेना को छिन्न-भिन्न कर डाला। इस विपुल सफलता की स्मृति में सोवियत सरकार ने बन्दरगाह का नाम स्तालिनग्राद रख दिया।

दूसरे महायुद्ध में नात्सी सेना से घिरे हुए स्तालिनग्राद के युद्ध की चर्चा प्रायः सबने सुनी। १६४१ के सितम्बर मास में हिटलर की 'अंधड़-फौज' ने शहर में प्रवेश किया, निर्मम और निष्ठुर युद्ध हुआ। ३० सितम्बर को हिटलर ने घोषणा की, "हमारी विजय पूर्ण होने वाली है। हमने स्तालिनग्राद पर आक्रमण किया है और तुम निश्चिन्त हो जाओ, स्तालिनग्राद पर हमारा अधिकार भी अवश्य होगा।" संसार के इतिहास में ऐसा युद्ध नहीं हुआ। ध्वंस का महाश्मशान बनी हुई नगरी के प्रत्येक पथ और प्रत्येक घर पर आधुनिक मारणास्त्रों की चोट पड़ी। तोपों और हवाई जहाजों से आये हुए गोलों के टूटे खोल चारों ओर फैल गए। राइफलों और मृत शरीरों से भूमि पट गई। विजय की आशा से हीन बौखलाये हुए जर्मन हत्या और ध्वंस के वीभत्स खेल में जुट गए, तब ८ जनवरी को सोवियत सेनापति ने चुनौती दी कि तुम न विजय प्राप्त कर सकते हो, न भागकर प्राण बचा सकते हो। निरर्थक रक्त-पात से अलग होकर आत्म-समर्पण कर दो। जर्मन-सेनापति ने इस उदार प्रस्ताव को ठुकरा दिया। लाल फौज ने जब क्रुद्ध और आहत सिंह की भाँति आक्रमण किया तब नाजी फौज के पैर उखड़ गए। मार्शल जुकोब ने शत्रु की ६० डिवीजन सेना को पीट-कर ७ महीने से घिरी हुई स्तालिनग्राद नगरी पर फिर अधिकार कर लिया। मार्शल वान पावल्स ने चौबीस जनरलों, २५०० आफिसरों और २० हजार सैनिकों के साथ आत्म-समर्पण किया। १६४३ की ५ फरवरी को विध्वस्त महानगरी स्ता-लिनग्राद में नात्सियों के विजय-अभियान की समाधि बन गई।

जारित्सिन और स्तालिनग्राद के दो-दो बार के निर्भीक शौर्य और शत्रुओं के पराजय के चिह्न एक संग्रहालय में सुरक्षित कर दिये गए हैं। शत्रुओं से छीनी हुई तोपें, बन्दूकें और तलवारें, लेनिन की लिखी चिट्ठियाँ, स्तालिन द्वारा दिये गए उत्तर, कागज-पत्र तथा चित्र आदि देखते हुए हम एक कमरे में उपस्थित हुए। नात्सियों को पीट देने वाले लेनिनग्राद ने संसार के विभिन्न देशों से जो अभिनन्दन और उपहार प्राप्त किये हैं, वे इस कमरे में संग्रहीत हैं। ब्रिटेन के राजा षष्ठ जार्ज की तलवार और रूज़वेल्ट का स्वर्ण-मण्डित अभिनन्दन-पत्र सामने है। नात्सियों के जबड़े से अपनी ही नहीं, संसार भर की रक्षा करने वाले को देश-देशान्तरों से कितना आदर मिला है। हमारी मातृभूमि भारत का उपहार भी कहीं है? देखा तो छात्र-फैडरेशन की दिल्ली-शाखा द्वारा भेजी गई एक बनारसी साड़ी और एक हार ही भारत का प्रतिनिधित्व करता हुआ मिला। हमारा भाग्य अच्छा है कि

यह उपहार बंगाल के छात्र-फेडरेशन ने नहीं भेजा। साड़ी, चूड़ी और हार तो हम लोग कापुरुषों को ही परिहास के साथ उपहार में भेजते हैं !

संग्रहालय से हम लोग बाहर आ गए हैं। सामने ही शहीद-चत्वर है। पूर्व में लगभग तीन मील लम्बी 'शांति-सड़क' है। सड़क के दोनों ओर पाँच-सात खण्ड के भवन हैं जिनमें श्रमिक और बुद्धिजीवी रहते हैं। चत्वर के पश्चिम में विशाल नाटयशाला बन रही है और उत्तर में उद्यान। हम वोल्गा नदी के तट की ओर चल रहे हैं। मार्ग के किनारों पर जहाँ नई इमारतें हैं वहीं टूटे-फूटे मकान भी जमीन में मुँह गड़ाये पड़े हैं। प्रति दिन चारों ओर घूमकर ध्वंस की प्रलयंकर लीला देखता हूँ। अनेक प्रकार से विदीर्ण विशाल-भवन प्रागैतिहासिक काल के विशालकाय जीव के कंकाल-जैसे पड़े जान पड़ते हैं। पाँच-सात खण्ड का एक मकान जैसा-का-तैसा खड़ा है। परन्तु उसकी दीवारें गोलियों से छलनी हो गई हैं। इस भवन पर बम नहीं गिरा, इसके प्रत्येक खंड में, प्रत्येक कमरे में, आमने-सामने युद्ध हुआ है।

संध्या हो गई है। नर-नारियों और बच्चों के झुण्ड नदी-तट की ओर जा रहे हैं। धोती पहने और चादर ओढ़े हुए मैं बंगाली अपने साथ कौतूहल लिये जा रहा हूँ। यही वोल्गा नदी है। नगर के पूर्व की ओर ढालू होती हुई उतर गई है, पश्चिम को ओर खड़ी और ऊँची है। कैस्पियन सागर का संगम अधिक दूर नहीं है। जान पड़ता है कि पूर्वी बंगाल का कोई टुकड़ा रूस में आ गया है। यह नारायणगंज है या चाँदपुर ? वैसा ही स्टीमर-घाट है। गधाबोट वैसे ही छोटा-सा स्टीम लंच घसीटे लिये जा रहा है। यात्रियों वाला स्टीमर घाट पर लंगर डाले खड़ा है। पाल वाली नावें छाती फुलाये चली आ रही हैं। चीलें आकाश में पर फैलाये उड़ रही हैं। अपने देश, अपनी जन्म-भूमि की स्मृति बहुत तीव्र हो गई है—मन उन्मत्त हो गया है। कहाँ है पद्मा, यमुना, धोलेश्वरी और मेघना—कहाँ है वोल्गा ! कल्पना की आँखें देख रही हैं कि—नदी के उस पार वाली तरु-श्रेणी से ढके गाँवं के निस्तब्ध निकेतन में, दिन-भर काम से थका हुआ मनुष्य हमारे देश की ही भाँति स्नेह, ममता और प्रेम के आधार पर अपने शांत नीड़ में लेट रहा है। बहुत-दिन पहले एक बार मलाबार में भी पूर्वीय बंगाल की श्यामल-श्री ने मन को इसी भाँति अभिभूत किया था। स्तालिनग्राद, तुम वीर्यवती ही नहीं सौंदर्यशालिनी भी हो। पूर्वी बंगाल की सजल, कोमल श्यामल-श्री, अस्ताचलगामी रवि के रक्तिम प्रकाश में अपूर्व रूप धारण करके दिग-चक्रवाल तक को उद्भासित कर रही है।

बारह

स्तालिनग्राद में दो कारखाने देखे हैं। एक 'रेड अक्टूबर फैक्टरी' नामक इस्पात का कारखाना है, दूसरे का नाम है 'जेरजिस्की ट्रैक्टर फैक्टरी'। लड़ाई में ये दोनों कारखाने ध्वस्त हो गए थे, अब नई मशीनरी बिठाई गई है। इस्पात का कारखाना बहुत बड़ा नहीं है। सामने सड़क और उद्यान है। कारखाने श्रमिकों के निवास-स्थान देखकर हमने वोल्गा नदी के तट पर इनका 'पैलेस आफ टैकनीक' देखा। उसकी तैयारी में एक करोड़ रूबल खर्च हुआ है। इसके नाचघर, भोजनशाला कारीगरी की शिक्षा का केन्द्र है और ६०० व्यक्तियों के बैठने योग्य नाट्यशाला आदि देखे। श्रमिकों की सांस्कृतिक उन्नति और उनके मनोविनोद की पूर्ण व्यवस्था है। किंडर गार्टन के स्कूल, शिशुपालनागार और अस्पताल तो हैं ही।

ट्रैक्टर-फैक्टरी नगर के केन्द्र से लगभग २० मील दूर है। फैक्टरी के आस-पास नया केन्द्र ही बस गया है। सड़कों के दोनों ओर पेड़ों की पंक्तियाँ और उद्यान हैं। स्कूल, निवास-भवन, क्लब और बाजार से आगे निकलकर हमने कारखाने के प्रांगण में प्रवेश किया। दुतल्ले के एक बड़े कमरे में संचालक और इंजीनियरों आदि ने हमारा स्वागत किया। खिड़की से पुराने कारखाने के ध्वंसावशेष दीख पड़ते हैं। कुछ अंशों की मरम्मत संभव नहीं हो सकी। नया कारखाना दो-तीन वर्ष से चालू हुआ है। कारखाने में तीस हजार नर-नारी काम करते हैं। एक साल में एक नया ट्रैक्टर या मोटर से चलने वाला विशालकाय मशीनी हल कारखाने मे बनकर बाहर आ जाता है। प्रांगण में लगभग एक हजार नए ट्रैक्टर विभिन्न कृषि-केन्द्रों में भेजे जाने के लिए रखे हैं। मालगाड़ी के खुले हुए डिब्बों में क्रेन द्वारा चढ़ाये जा रहे हैं।

कारखाने के भीतर पहुँचा। यह तो विश्वकर्मा की कर्मशाला मालूम होती है। विभिन्न विभागों में बिजली के घूमते हुए यन्त्रों पर ट्रैक्टर के विभिन्न अंग बन रहे हैं। अंगों के जोड़ने का काम भी साथ-ही-साथ हो रहा है। यन्त्रों से चलने वाली ट्रालियों पर यह एक विभाग से दूसरे विभाग में भेजे जा रहे हैं। अन्त में पूरा ट्रैक्टर बनकर कारखाने से बाहर आ जाता है। एक मशीन के सामने हम खड़े हो गए, संचालक ने बताया कि पहले इसको चलाने के लिए २४ श्रमिकों की आवश्यकता होती थी। अब सोवियत-इंजीनियरों ने इसे इतना उन्नत कर दिया है कि दो श्रमिक ही चला रहे हैं। हमने देखा इन दो श्रमिकों में भी एक स्त्री है और उसकी छाती में सोने का मैडिल चमक रहा है। यह समाजवादी श्रमिक हीरोइन (नायिका) है। मैंने प्रश्न किया कि यन्त्र की उन्नति के परिणामस्वरूप २२ श्रमिक हटा दिये गए हैं, यंत्र की उन्नति क्या श्रमिकों के स्वार्थ के विरुद्ध नहीं पड़ती? महिला ने उत्तर दिया

"विरुद्ध क्यों होने लगी ? शारीरिक श्रम घटाना और मेहनत का श्रम कम करना ही तो हमारा लक्ष्य है। हमने अपने २२ कामरेडों को नये रचनात्मक कार्य में भाग लेने के लिए मुक्त कर दिया है। हमारे यहाँ किसी को बेकार नहीं बैठना पड़ता।"

यहाँ के श्रमिक नर-नारी हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ हैं। किसी के शरीर में सिरतोड़ परिश्रम करने के चिह्न नहीं दीख पड़ते। प्रतिदिन ८ घण्टे से अधिक परिश्रम करना कानूनन मना है। रविवार को यहाँ छुट्टी नहीं होती। श्रमिक बारी-बारी से प्रत्येक ५ दिन के बाद छुट्टी पाते हैं। सप्ताह में एक बार स्वास्थ्य-परीक्षा होती है। चिकित्सा की आवश्यकता होने पर अस्पताल भेज दिया जाता है। वर्ष में १५ दिन से एक महीने तक की छुट्टी मिलती है तब ये लोग स्वास्थ्य-निवासों में चले जाते हैं, खर्च कारखाना उठाता है। ट्रेड यूनियन श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा करने में सदा सतर्क रहती है।

वोल्गा नदी के तट पर बना हुआ 'पैलेस आफ कल्चर' इसी कारखाने से संबद्ध है और एक बहुत बड़ी चीज है। इसमें २६ विभाग हैं, श्रमिकों और उनके बच्चों को मशीनी कारीगरी के अतिरिक्त साहित्य, विज्ञान, संगीत, नृत्य, वाद्य, चित्र और भास्कर्य-कला की शिक्षा देने वाले विभिन्न विभाग। हमने ये सब घूम-फिरकर देखे। किशोर और किशोरियों ने हमें बैण्ड बजाकर सुनाया। थोड़ी दूर पर ही शिशुपालनागार हैं। काम पर जाते समय स्त्रियाँ अपने बच्चे यहीं छोड़ गई हैं। ६ महीने से लगाकर तीन वर्ष तक के बच्चे हैं। कोई खेल रहा है, कोई सो रहा है, कोई अकेला ही बैठा है और खिलौने को उलट-पुलटकर देख रहा है। सेविकाएँ बड़ी तत्परता के साथ सबकी देख-भाल कर रही हैं। ये उनके ही बच्चे हैं जिनके पास न धन था, न मर्यादा थी। हमारे देश के खाते-पीते और भले कहे जाने वाले परिवार के बच्चे भी इतने आदर से नहीं पाले जाते। नवयुग के नये मनुष्य के निर्माण का कार्य इन लोगों ने बुनियाद से ही प्रारंभ किया है। स्वामी विवेकानन्द ने 'मैन मेकिंग रिलीजन' में जिस की चर्चा की है यहाँ उसका सच्चा स्वरूप देखा है। इन लोगों ने वास्तव में यह ज्ञान उपलब्ध कर लिया है कि सर्वत्र एक ही प्रकाश है।

गत महायुद्ध में अनाथ हो जाने वाले शिशुओं तथा किशोरों और किशोरियों का भवन भी देखा। ये दया के दान से चलने वाले अनाथाश्रमों के डरपोक बच्चे नहीं हैं। इन लोगों ने भवन का नाम अनाथाश्रम नहीं—'शिशु-प्रासाद' रखा है। अपने देश के दो-चार अनाथाश्रम देखे हैं, जहाँ अभागे और अनाथ बच्चे धनियों की जूठन से पाले जाते हैं परन्तु वे कठोर शासन से पंगु होकर आनन्द-रहित हो जाते हैं। गली-गली भीख माँगना या चिकित्सा के बिना मर जाना ही तो हमारे देश का सनातन नियम है। यहाँ सर्वथा विपरीत दशा देख रहा हूँ। बलिष्ठ शरीर और हास्य से उज्ज्वल मुख वाले बालकों तथा बालिकाओं ने हमें अपने पढ़ने और सोने के कमरे

दिखलाए, छोटे से रंगमंच पर नृत्य तथा अभिनय द्वारा अपनी प्रसन्नता प्रकट की। ये लोग पारिवारिक जीवन पर दुर्भाग्य आने के कारण फेंके हुए कूड़ा-करकट नहीं हैं, समाज की मूल्यवान् सम्पदा हैं।

संध्या के समय वोल्गा में मोटर-बोट पर चढ़ा। कुछ दूर चलने के बाद बोट नगर के दूसरी ओर ठहर गया। हम सब उतर पड़े। खड़ा किनारा है, बालू से लड़ कर ऊपर पहुँचा। एक वृद्धा अपने नाती और नातिन को लेकर स्नान करने आई है। हमारे कई साथी पानी में उतर पड़े, मैं भी उतरा। मेरा तैरना देखकर सभी अवाक्-हो गए। कामरेड अकसाना ने उद्विग्न होकर कहा:—"अधिक दूर न जायँ", परन्तु कौन सुनता है। मैं बंगाल का देहाती—पानी देखकर डर जाता! बहुत दिनों बाद तैरने और नदी में जी भरकर स्नान करने का अवसर मिला है। बोट लौट रहा है, आकाश में चन्द्रमा उदय हो चुका है। हमारे देश और इस भूमि में कोई अन्तर है?

अन्तर क्यों नहीं है! यहाँ की नदी में ही न हो, मनुष्यों के मन की सूखी गंगा नदी में भी ज्वार आ गया है। यहाँ और भी बड़े स्तालिनग्राद के निर्माण का उद्योग हो रहा है। सर्वस्व त्याग करके भी इन लोगों ने जिस प्रकार स्तालिनग्राद का शत्रु की मुट्ठी से उद्धार किया है, उसी प्रकार इसके नवनिर्माण का कठोर उत्तरदायित्व भी उठा लिया है। और हमारा स्वदेश कर्म निर्देश-हीन भाषणों की बाढ़ में तिनके की तरह बह रहा है। तुलना करते ही हृदय विषाद से दब जाता है।

'सिटी आर्किटेक्टर' के कार्यालय से ज्ञात हुआ कि नया स्तालिनग्राद तीस वर्ग मील के घेरे में बन रहा है। उन्होंने नये नगर की पूरी योजना दिखाई और समझाई। नगर के केंद्र वाले तीन वर्ग मीलों में जो टाउन-हाल, थियेटर, स्कूल, कालिज, होटल और उद्यान बनेंगे उनके नकशे हमें दिखाए गए। १९५६ में निर्माण-कार्य समाप्त हो जायगा। वोल्गा नदी पर जो बड़ा बिजलीघर बन रहा है, वह १९५२ में काम करने लग जायगा। बिजली की उस शक्ति को काम में लगाने के लिए उद्योग-केन्द्र और कारखाने आदि बन रहे हैं। रूसी जन-साधारण की सम्मिलित इच्छा वाली निर्माण-शक्ति का दुःसाहस स्तालिनग्राद में मूर्तिमान् हो गया है।

शहीद-चत्वर पर खड़े होकर देख रहा हूँ—वीरों के शोणित से सिंची हुई भूमि पर अजस्र फूलों का भार लिये श्यामल तरु-श्रेणी झुकी हुई है—उसकी स्निग्ध-छाया में हास्य-मुखर शिशु खेल में जुटे हैं। बारह वर्ष के एक लड़के का हाथ पकड़े हुए एक वृद्धा हमें देख कर चलते-चलते रुक गई। हमें भारतीय जानकर उसके कितनी ही रेखाओं से कुंचित ललाट के नीचे छिपी हुई दो निष्प्रभ आँखों में प्रीति की प्रसन्नता चमकने लगी। वे बोलीं—"तुम्हारे देश के समाचार कभी-कभी मिलते हैं—तुम लोग भी तो शांति-आन्दोलन में भाग लेते हो।"

मैंने कहा—"हम लोग शांतिवादी हैं। यहाँ आकर हमने जो कुछ देखा उससे यही जान पड़ता है कि तीसरा महायुद्ध रोका न गया तो मनुष्य सभ्यता की सब सम्पत्ति गँवाकर दिवालिया हो जायगा।"

वृद्धा ने तर्जनी से एक स्थान दिखाते हुए कहा—"यहीं पर एक टूटे हुए टैंक की बगल में खड़े होकर मेरे दो पुत्रों और मेरी पुत्रवधू ने मशीनगन से शत्रु को रोका था। पितृ-भूमि की रक्षा के लिए तीनों ने यहीं अपने प्राण दिये हैं। उन दारुण दुर्दिनों की स्मृति द्वारा इस शिशु को कलेजे से लगाये मैं जी रही हूँ। स्तालिनग्राद के बच्चे फिर शांति का नीड़ बना रहे हैं। क्या इसीलिए कि यह भी शत्रु के बमों से ध्वस्त हो जाय? तुम अपने देश में लौट कर यही कहना कि हम युद्ध नहीं चाहते, किसी की सम्पदा के लिए लोभ या ईर्ष्या हमारे पास नहीं है। हमारी संतान मनुष्य होगी, बध-भूमि पर बलि का पशु न बनेगी।"

जान पड़ता है कि अपने पुत्र के आत्म-बलिदान के गौरव से गर्वित कोई राजपूत रमणी मध्यकालीन इतिहास के पन्नों में निकल आई है और हमारे सामने खड़ी हो गई है। अपरिचित और विदेशी के सामने अपने अवरुद्ध भावावेग को सँभालकर वृद्धा ने कहा,"आशीर्वाद देती हूँ भारत की संतानें नर-घातक न बनें।" मैं नतमस्तक होकर बोला, "माँ, आज के युग में इससे बड़ा आशीर्वाद और कोई नहीं हो सकता।"

कुरुक्षेत्र के रणांगन में सौ पुत्रों के वियोग से व्यथित गान्धारी का विलाप याद आ रहा है। आज भी सैकड़ों पति-पुत्रहीनाओं के कण्ठ शोकावेग से रुँधे हैं। पार्थसारथी नारायण उस दिन गान्धारी के सामने हतवाक् और अधोमुख हो गए थे। आज भी कोरिया, वियतमिन्ह् और मलाया की सैकड़ों, सहस्रों अश्रुमुखी नारियों का आर्त-विलाप मानवता के न्यायालय की पाषाण-शिला पर अपना सिर पटक रहा है।

तेरह

१५ जुलाई को हम लोगों ने स्तालिनग्राद से बिदा ली। सहज स्वाभाविक निपुणता के साथ वायुयान ऊर्ध्व लोक में पहुँच गया; वायुमंडल स्तब्ध है, पृथ्वी मेघों से ढकी है। जाड़ा लगने लगा, कम्बल ओढ़ लिया। चार घंटे में मास्को आ गया, यहाँ देखता हूँ भयंकर गर्मी पड़ रही है। आज का दिन आधी शताब्दी में सबसे अधिक गरम दिन कहा जा रहा है। एक सज्जन ने हँसकर कहा, "तुम भारतीय गर्मी ले आये हो।"

रेडियो-केन्द्र से स्तालिनग्राद के अनुभवों पर बंगला में एक भाषण देने के बाद लौटा तो सुना कि तास-एजेन्सी के कुछ प्रतिनिधि हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं। प्रतिनिधियों को हमने अपने-अपने अनुभव सुनाये। इस प्रसंग में मैंने कहा—"सब-कुछ देखा, परन्तु बहु-प्रचारित 'लौह यवनिका' के दर्शन नहीं हुए। मालूम होता है यह वस्तु रूस में नहीं रूस-विरोधियों के मस्तिष्क में बैठी है।" दूसरे दिन 'प्रवदा' में यह विवरण प्रकाशित हुआ और रूटर ने इसे लन्दन से भारत पहुंचा दिया। स्वदेश लौटने पर सुना कि इस बात को लेकर समाचार-पत्रों ने मेरे ऊपर आक्रमण किया है और मुझे अपने विद्रूप का निशाना बनाया है। एक ने रंग देकर लिखा है कि मास्को पहुँचते ही मैंने यह विवरण दिया है। सत्य के प्रति कुछ भी निष्ठा होती तो वे देखते कि मास्को पहुँचने के कम-से-कम तीन सप्ताह बाद यह सम्मति दी है और देश लौटने के बाद कई सार्वजनिक सभाओं में इसे दुहराया है।

'लौह यवनिका' शब्द का कई उद्देश्यों और कई अर्थों में प्रयोग होता है।

पहला अभियोग—वे लोग पहले से कुछ पूर्व निश्चित स्थान और संस्थाएँ ही दिखाते हैं, स्वतन्त्र रूप से देखने-सुनने का कोई उपाय नहीं मिलता। निमंत्रित प्रतिनिधियों के लिए 'कण्डेक्टेटर' की व्यवस्था में रूस का वास्तविक जन-जीवन छिपा हुआ ही रह जाता है।

उत्तर—थोड़े समय में अधिक देखने के लिए सब कहीं ऐसी ही व्यवस्था की जाती है। जो लोग एक साँस में ही यूरोप और भारत का भ्रमण करते हैं वे भी टामस कुक या ऐसी ही किसी संस्था द्वारा निश्चित किये गए ही स्थान देखते हैं, रोम में हमें इसका अच्छा अनुभव हुआ है। परन्तु रूस की व्यवस्था स्वतन्त्र है। रात में हम लोग आपस में विचार करने के बाद देखने योग्य स्थान और संस्थाएँ निश्चित कर लेते थे। उस निश्चय के अनुसार वे लोग यातायात की व्यवस्था कर देते थे और दुभाषिया दे देते थे। आँख-कान खुले हों तो नगर या गाँव के जन-जीवन को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती। नानी की कहानी की भाँति वे लोग हमारी

आँखों पर पट्टी बाँधकर हमें किसी रहस्य-लोक में नहीं ले जाते थे। समाजवादी सभ्यता की नई रचना को गौरव के साथ दिखाने के लिए ही उन लोगों ने हमें निमंत्रित किया था। ऐसा सन्देह करने का कारण हमें नहीं मिला कि ये लोग कुछ लुका-छिपाकर हमें दिखा रहे हैं, या सब-कुछ साज सँवारकर हमारे सामने ला रहे हैं। ब्रिटेन, नार्वे और अमेरिका के श्रमिक-प्रतिनिधियों से मेरा वार्तालाप हुआ है, वे लोग भी इस विषय में एकमत हैं। अपने-अपने देशों में लौटकर उन्होंने भी 'लौह-यवनिका' का अस्तित्व अस्वीकार किया।

दूसरा अभियोग—विदेशियों के रूस-प्रवेश को वे बड़े सन्देह के साथ देखते हैं और बड़ी खींच-तान करते हैं।

उत्तर—इस अभियोग को वे लोग भी अस्वीकार नहीं करते। हमें स्मरण रखना चाहिए कि पूँजीवादी देशों ने सोवियत के जन्म-काल से ही उसके प्रति विरोध और बहिष्कार की जो भावना प्रकट की है वह अब तक वैसी ही प्रबल है। दूसरे महायुद्ध में जर्मनी के कड़े दबाव के कारण जो लोग उससे भी अधिक शक्तिशाली राष्ट्र रूस के प्रेम में मतवाले हो गए थे, मौका निकल जाने के बाद उन्होंने भी अपना स्वर बदल लिया है। सम्पूर्ण यूरोप के 'लाल' हो जाने का पूँजीवादी आर्तनाद और सोवियत के प्रति उनका विद्वेष १९४७ में ही आरम्भ हो चुका है। इस परिस्थिति में रूसियों का हृदय प्रेम की प्रसन्नता और उदारता से सराबोर नहीं रह सकता। पूँजीवादी गुप्तचरों आदि के प्रति उन्हें सजग और ध्वंसात्मक कार्यों से बचने के लिए सतर्क रहना ही पड़ता है। पत्रकार के छद्म वेश में जासूसी करने वालों से भी उनका काफी वास्ता पड़ चुका है। अन्तर्राष्ट्रीय सौहार्द का आदान-प्रदान एक दूसरे को श्रद्धा के साथ जानने और समझने की चेष्टा पर निर्भर करता है। आज के संसार में यह वस्तु दुर्लभ है।

तीसरा अभियोग—'लौह-यवनिका' की आड़ में वे लोग करोड़ों आदमियों को बन्दी-शिविरों में रखते हैं और उनसे क्रीत-दासों की भाँति कठोर परिश्रम भी कराते हैं। उराल और साइबेरिया के जंगलों में ऐसी अमानुषिक व्यवस्था है।

उत्तर—आँखों ने सब रूसी श्रमिकों की जो सम्मान-पूर्ण मर्यादा और जीवन-निर्वाह की स्वच्छ और सुन्दर व्यवस्था देखी है उसके सामने यह अभियोग टिक ही नहीं पाता। जो झूठी निन्दा है उसे तर्क से नहीं काटा जा सकता।

चौथा अभियोग—'लौह-यवनिका' की आड़ में वे लोग विश्व पर विजय प्राप्त करने की दुराशा का पोषण कर रहे हैं और उसके लिए अपार सामरिक शक्ति बना रहे हैं।

उत्तर—ईसप की कहानियों में भेड़ के बच्चे की हत्या करने वाले भेड़िये ने भी यही दलील दी थी। सौ वर्ष पूर्व कवि हेमचन्द्र ने एक पंक्ति में लिखा था कि

"संसार को अपना ग्रास बनाने की इच्छा के साथ वहाँ अमेरिका का अभ्युदय हो रहा है।" आज वह मूर्ति खुले रूप में प्रत्यक्ष हो रही है। पुराने यूरोप के साम्राज्यवाद का उत्तराधिकारी बनने की आशा लेकर नवीन यूरोप अपने पद-चाप से यूरोप और एशिया की भूमि कँपा रहा है। दलील के लिए उसे 'लौह-यवनिका' पर पूरा जोर लगाना ही चाहिए। सिर से पैर तक हथियारों से लदकर वह सभी देशों में पहुँच गया है। प्रश्न करने पर दाहिने हाथ में राइफल उठाकर और बाएँ हाथ के अँगूठे से पीछे की ओर इशारा करके वह कहता है, वह देखो, वह देखो लाल जूजू आ रहा है। तुम्हारी रक्षा तो करनी ही पड़ेगी! तुम हट जाओ पहले मैं अपनी रक्षा कर लूं! कहना ही पड़ता है कि जहाँ स्वाधीन संसार ही संकट में है वहाँ तुम क्या कर लोगे? खुद भी मरोगे और हमें भी मारोगे। लाल जूजू को 'लौह-यवनिका' के पिंजरे में ही बन्द रखने के लिए 'पैक्ट यवनिका' की आवश्यकता है।

हमारे देश में ये सब झंझट नहीं थे। हमारा सदर दरवाजा हजारों वर्ष से खुला था। ग्रीक, यवन, शक-हूण, तुर्क-पठान, मुगल, अँगरेज, फ्रांसीसी, पोर्तुगीज, डैनिस और हालैण्डी सभी आये हैं। स्वाधीन होने के बाद भी पश्चिम वालों के लिए हमारा प्रवेश-द्वार खुला ही है। हम भी बिना किसी झंझट के यूरोप और अमेरिका की यात्रा कर सकते हैं। परन्तु रूस या चीन जाना हो तो 'खादी-यवनिका' से टकराना ही पड़ता है। अमेरिका और इंग्लैण्ड में भी यही स्थिति है। विशेष श्रेणी के व्यक्तियों के लिए आने-जाने का पासपोर्ट मिलना दुरूह ही रहता है। हाल ही में बर्लिन में जो युवकों का समारोह हुआ था, उसमें भाग लेने वाले तरुणों और तरुणियों को पास-पोर्ट न देने की खींच-तान ब्रिटेन और अमेरिका में ही नहीं भारत में भी देखी गई। शीशे में बैठकर दूसरे के घर में पत्थर फेंकने का खेल सुरक्षित नहीं हो सकता। अन्तर्राष्ट्रीय खींच-तान में तटस्थ रहने और किसी भी शक्ति-शिविर में सम्मिलित न होने की दृढ़ प्रतिज्ञा करने वाले जवाहरलाल के भारत में रूसी प्रतिनिधियों को प्रवेश करने की आज्ञा नहीं मिली; कई भारतीयों को रूस जाने की अनुमति नहीं दी गई, किन्तु अमेरिका के सम्बन्ध में ऐसा नहीं होता! यवनिका पर यवनिका है; वह लोहे की हो या किसी और चीज की।

चौदह

मास्को के उपकण्ठ लेनिन पर्वत पर नया विश्वविद्यालय बन रहा है। १९४९ के फरवरी महीने से काम प्रारम्भ हुआ है। १९५२ के दिसम्बर महीने में समाप्त हो जायगा। इतने थोड़े समय में विशाल अट्टालिकाओं से एक पूरा नगर बना डालना सोवियत इंजिनियरों और मजदूरों की बड़ी बहादुरी है। हमने देखा कि काम लगभग समाप्त हो आया है। प्रधान स्थपति ने हमें अपने कार्यालय में बिठाकर पूरी योजना समझाई। कई विभागों में विभक्त विश्वविद्यालय लगभग १६०० बीघे भूमि पर बन रहा है। केन्द्रीय विभाग का भवन ३६ खण्ड ऊँचा है। मास्को-विश्वविद्यालय के पुराने भवन से विज्ञान के ६ विभाग यहाँ लाए गए हैं। केन्द्रीय भवन में खनिज-विज्ञान, भू-विज्ञान, यन्त्र-विज्ञान तथा गणित और भूगोल के विभाग रहेंगे। अगल-बगल के भवनों में पदार्थ-विद्या, रसायन और जीव-विज्ञान होंगे। एक विशेष भवन बन रहा है, उसमें मान-मन्दिर या ज्योतिर्विज्ञान की अनुसंधानशाला होगी। विज्ञान की गवेषणा और प्रगति के लिए इस विद्या-मन्दिर की प्रतिष्ठा करने में सोवियत सरकार ने पहली किस्त में तीन करोड़ रूबल खर्च किये हैं। इस आवासिक विद्यालय में २००० छात्र और २०० अध्यापक रहेंगे। हमने छात्रावास आदि का नक्शा देखा। छात्रों के कमरों में पढ़ने-लिखने और विश्राम करने की सुविधापूर्ण व्यवस्था तो होगी ही साथ में एक स्नानागार भी होगा। अध्यापकों के लिए दर्शनीय सामग्री से सजे हुए तीन कमरे, स्नानागार और बिजली के चूल्हे वाली रसोई होगी।

हम लोगों ने उस विशाल पुस्तकालय का भवन भी देखा, जिसमें बारह लाख पुस्तकें होंगी। मशीन से चलने वाले ट्यूब के द्वारा पुस्तक माँगने वाले छात्र या अध्यापक के टेबुल पर दस मिनट में पहुँचा दी जायगी। दो सौ नब्बे बीघे भूमि पर 'बोटानिकल' गार्डन भी बन रहा है। देश-देशान्तरों की तरु-लताओं का इसमें समावेश होगा, और उद्भिज-विज्ञान की गवेषणा का प्रबन्ध रहेगा। विज्ञान के विभिन्न विभागों की विधि-व्यवस्था का विवरण सुनते-सुनते मैंने प्रधान स्थपति से कहा, "आपकी प्रत्येक कल्पना बृहत् है"; उन्होंने हँसकर उत्तर दिया, "इसलिए कि रूस बृहत्तर है।"

नये विश्वविद्यालय में अगले वर्ष से ही काम प्रारम्भ हो जायगा। कोरिया और चीन से ६०० छात्र तथा छात्राएँ सम्मिलित होंगी। मैंने पूछा कि भारतीय छात्रों को यहाँ विज्ञान की शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा मिल सकती है या नहीं; उत्तर मिला—अवश्य मिल सकती है। हम प्रत्येक देश के विद्यार्थी लेने के लिए प्रस्तुत हैं, परन्तु बाधाएँ हैं। पहली बाधा यह है कि तुम्हारे देश के विद्यार्थी जितनी

अँगरेजी पढ़ते हैं उतनी ही रूसी पढ़नी चाहिए, क्योंकि हमारे अध्यापक अँगरेजी नहीं जानते । दूसरी बाधा यह है कि तुम्हारी सरकार अपने युवकों को यहाँ आने देगी या नहीं । दूसरे प्रश्न का उत्तर देना कठिन है और पहली बाधा सुनकर हमारे देश के शिक्षित अट्टहास करेंगे । भारत के ९९ प्रतिशत व्यक्ति कहेंगे कि जो अँगरेजी नहीं जानते वे अध्यापक ही नहीं बन सकते । मातृ-भाषा के माध्यम से उच्च शिक्षा दी जा सकती है ऐसा करने का साहस हमारे यहाँ नहीं है । स्कूलों में शायद यह व्यवस्था हो भी सके परन्तु कालिजों के लिए यह खोटा सिक्का है । दूसरे की भाषा में ज्ञान प्राप्त करने की साधना संसार के किसी भी स्वाधीन देश में नहीं है । परन्तु हमारे यहाँ मातृ-भाषा की इतनी उपेक्षा है कि अँगरेजी न जानना अपराध समझा जाता है । रूस के ख्यातनामा साहित्यिकों को देखा, यह कहने में उनके कर्णमूल लज्जा से लाल नहीं हो जाते कि हम अँगरेजी नहीं जानते । अब अपने देश में उत्तर भारत की ग्रामीण और कथ्य-भाषा को राष्ट्र-भाषा के रूप में चलाने का उत्साह देख रहा हूँ, परन्तु पण्डितगण हाय-हाय कर रहे हैं कि स्कूलों और कालिजों में अँगरेजी न पढ़ाई जायगी तो शिक्षा ही लुप्त हो जायगी । ऐसे लोगों की कुयुक्तियों के उत्तर में ही रवीन्द्रनाथ ने कहा है "ये दोनों बातें एक ही जैसी हैं कि अँगरेजी होटलों के सिवा भारतवासियों को कहीं पुष्टिकर खाद्य नहीं मिल सकता और अँगरेजी के बिना मातृ-भाषा में ज्ञान की पूरी साधना नहीं हो सकती ।"

हिन्दी या हिन्दुस्तानी को राष्ट्र-भाषा के रूप में स्वीकार किया गया है मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं है, परन्तु जब प्रान्तों की प्राचीन और वेगवान् भाषाओं को हटाकर हिन्दी चलाने का उद्योग किया जाता है तो दुःख होता है । कम-से-कम हमारे पड़ौसी बिहार में ऐसी चेष्टा हो रही है । बंग-भाषा-भाषियों के विद्यालयों को नोटिस दिये गए हैं कि हिन्दी के माध्यम से इतिहास, भूगोल, गणित और विज्ञान आदि पढ़ाने की व्यवस्था न की गई तो सरकारी सहायता बन्द कर दी जायगी । पुर्निया के एक बालिका-विद्यालय की सहायता बन्द भी हो गई है । इसे प्रान्तीय संकीर्णता का मोह ही कहना चाहिए । जातीय संस्कृति का विकास करने के लिए मातृ-भाषा माता के दूध की भाँति आवश्यक है । बहु भाषा-भाषी भारत इस सम्बन्ध में रूस का अनुकरण कर सकता है ।

रूस में रूसी भाषा सब पढ़ते हैं परन्तु विद्यालय से लगाकर कालिज तक की शिक्षा विभिन्न जातियों की मातृ-भाषाओं में ही दी जाती है । जार्जिया के तिबलिस विश्वविद्यालय में देखा कि उच्च शिक्षा का माध्यम जार्जिया भाषा ही है ! जार्जियनों में मातृ-भाषा का प्रेम इतना प्रबल है कि वे आपस में कभी किसी दूसरी भाषा में बात नहीं करते । रूसियों के साथ वे रूसी भाषा बोलते हैं । परन्तु विदेशियों के साथ अपनी मातृ-भाषा का ही प्रयोग करते हैं । दुभाषिये को हमें अँगरेजी में

समझाना पड़ता है। उजबेकिस्तान में भी यही दीख पड़ा। उजबकों की लेख्य-भाषा की आयु केवल २५ वर्ष की है, परन्तु पठन-पाठन उजबेक भाषा में ही होता है। रूसी, जर्मनी और फ्रांसीसी साहित्य, विज्ञान और दर्शन की अनेक पुस्तकें उजबेक भाषा में अनूदित हो गई हैं।

पन्द्रह

१७ जुलाई। मास्को से सबेरे ८ बजे हवाई जहाज़ चला है, खारकोब और रस्टोव को पीछे छोड़ आया है; नीचे कृष्ण सागर का नीला जल फैला है। सोकोनी में हवाई जहाज़ रुका। चाय पीने के बाद फिर यात्रा प्रारम्भ हुई और हम लोग काकेशश पर्वत-माला के ऊपर होकर शाम को सात बजे जार्जिया की राजधानी 'तिबलिस' के हवाई अड्डे पर उतरे। स्थानीय लेखक-संघ ने हमारा स्वागत किया।

चारों ओर की पर्वत-माला से घिरी हुई उपत्यका की असमतल भूमि पर तिबलिस नगर बसा है; बीच से प्रखर प्रवाह वाली कुरा नदी टेढ़ी-मेढ़ी बह रही है। नदी के दोनों किनारों पर फार, पपलर, चिनार और पाइन के पेड़ों की पंक्तियाँ है। कहीं-कहीं बगीचे हैं, जिनमें अनेक रंगों के असंख्य फूल हैं। ऐसा जान पड़ता है कि हम किसी स्वप्नपुरी में पहुँच गए हैं। सड़कें चौड़ी और साफ-सुथरी हैं। बिजली के उज्ज्वल और स्निग्ध प्रकाश में चारों ओर प्रसन्नता फैली जान पड़ती है। होटल के बरामदे से देख रहा हूँ, चारों ओर ऊँची सौध मालाएँ न दीख पड़तीं तो दार्जिलिंग का भ्रम हो जाता। यह कहने से भी इस सुन्दरी नगरी की तुलना नहीं हो पाती कि पूना और हैदराबाद हाथ मिलाकर साथ-साथ खड़े हो गए हैं। सामने पर्वत के शिखर पर बना हुआ प्रमोद-भवन आलोक से जगमगा रहा है।

ध्यान टूट गया, कामरेड अकसाना देवी कह रही हैं, पाश्ली, पाश्ली अर्थात् जल्दी करो।

होटल के पहले खण्ड में भोजनागार है। सुसज्जित टेबुल पर अनेक प्रकार के खाद्य और मद्य रखे हैं। जार्जिया की प्राचीन प्रथा के अनुसार भोज-सभा में एक नेता निर्वाचित होता है। जार्जिया लेखक-संघ के सभापति कलगेयरगी ल्योन्टास (Georgi Leonitze) भोज-सभा के सभापति अर्थात् 'तमादा' चुने गए। इस देश के नियमानुसार भोजन और पान के सम्बन्ध में तमादा के आदेश का यथा-साध्य पालन करना पड़ता है। लिओन्टास 'शालप्रांशु महाभुज' व्यक्ति हैं, प्रशस्त ललाट के नीचे उज्ज्वल नीली आँखें हैं, सुगठित शरीर से यौवन छलक रहा है। जार्जिया अंगूर और अन्य फलों से बनी हुई सुराओं के लिए प्रसिद्ध है। जार्जिया की 'शैम्पेन' फ्रांस की विश्व-विख्यात 'शैम्पेन' से किसी भी प्रकार कम नहीं है। भोजन आरम्भ हुआ। बारम्बार 'स्वास्थ्य-पान' करना पड़ेगा और पान-पात्र को एक साँस में खाली कर देना होगा। यहाँ की भोज-सभा एक विराट् व्यापार है। शाम से लगाकर रात के अन्तिम पहर तक अविराम गति से पान-

भोजन और नृत्य-गीत होता रहता है। एक सज्जन ने बताया कि किसी गांव में एक तमादा ने तीन दिन और तीन रात तक समान रूप से भोज-सभा और नृत्य-गीत चालू रखा था। हमारे तमादा इतने निष्ठुर नहीं हैं, परन्तु यों ही छोड़ देना भी नहीं जानते; रात को ११ बजे पर्वत-शिखर के एक सुरम्य प्रमोद-निकेतन तक खींच ले गए। फिर भोज-सभा जमी। निस्तेज सुरभित और सुमिष्ट सुरा उपस्थित की गई। निस्तेज होते हुए भी है तो सुरा ही। अपने तमादा और जार्जियन लेखकों के मुकाबले में 'स्वास्थ्य-पान' करना हम लोगों की शक्ति से परे है। हमने एक चालाकी खेली, सुरा के स्थान में गिलास में लेमनेड डालकर उन्हें 'स्वास्थ्य-पान' के लिए ललकारने लगे। तमादा ने आँखें मिला-मिलाकर हमारे गिलासों की ओर देखा परन्तु वह पीछे हट जाने वाले पात्र नहीं हैं। हमारे लेमनेड के बराबर ही अपने पान-पात्र को शैम्पेन से भरने लगे। रात को एक बजे सभा भंग हुई, आकाश में, चराचर में व्याप्त चन्द्र-लोक ने मोहमयी रचना कर रखी है, नीचे आलोकमाला-मण्डित तिबलिस नगरी है।

तिबलिस एक हजार वर्ष पुराना शहर है। सूत, कपड़े, इस्पात और पानी की बिजली के कारखाने बन जाने से जन-संख्या तीन-चार लाख हो गई है। शहर में जार्जियनों के अतिरिक्त रूसी, आर्मेनियन, ताजिक, तुर्की और कजाक आदि मध्य एशिया के विभिन्न जातियों के लोग रहते हैं। पुराने चिह्नों में गिरिजा, मस्जिद और प्राचीन प्रासाद-दुर्ग का ध्वंसावशेष ही हैं। शहर के भवन और मार्ग सब आधुनिक हैं। इनके शिल्प, साज-सामान और भित्ति-चित्रों में इनकी जातीय विशेषता झलकती है। जार्जियन अपने-आपको गर्व के साथ एक प्राचीन सभ्यता का उत्तराधिकारी कहते हैं और अपने जातीय साहित्य तथा कला के लिए गम्भीर अनुराग रखते हैं।

जार्जिया उत्तर-पश्चिम एशिया में एक छोटा-सा देश है। अठारह हज़ार फुट की ऊँची काकेशश पर्वत-माला से सटी हुई अपूर्व शोभा वाली उपत्यकाओं से भरी जार्जिया की उर्वर भूमि कृष्ण सागर तक फैली है। बाकू की विख्यात तेल-खान यहीं है। मैंगेनीज़, ताँबा और लोहे की खानें भी काफी हैं। सोवियत-काल में तिबलिस में इस्पात का एक बहुत बड़ा कारखाना बना है।

साहसी, अतिथि-सेवी, परिश्रमी, बुद्धिमान् और सुगठित शरीर वाली आर्य-वंशीय जार्जियन जाति, दो हजार वर्ष का इतिहास अपने साथ लिये है। इस इतिहास में राज्यों और साम्राज्यों के पतन और उत्थान की बड़ी-बड़ी घटनाएँ हैं। सिकन्दर, बैजण्टायन, चंगेज़खाँ और तैमूर आदि दिग्विजेताओं की चतुरंगिणी सेनाओं ने इस देश में प्रवेश किया है। उनके द्वारा की गई ध्वंसात्मक लीलाएं ये लोग अब तक नहीं भूले। स्वाधीनता के लिए इन्हें बड़े-बड़े और निरन्तर युद्ध करने

पड़े हैं। इनके लोक-गीत और इनकी लोक-गाथाएँ पूर्वजों की वीरताभरी कहानियों से पूर्ण हैं। दसवीं शताब्दी के कवि रुस्तावेली के काव्य की एक कहानी से मालूम होता है कि एक भारतीय राज-कन्या जार्जिया को रानी थी। पिछली शताब्दी के पहले चरण में जार्जिया को रूसी साम्राज्य ने हड़प लिया था। शताब्दी के अन्तिम भाग में क्रीमिया-युद्ध के समय जार्जियनों ने विद्रोह किया था। जार-सरकार ने अपने निष्ठुर अत्याचारों से विद्रोह दबा दिया था। प्राचीन और गौरव-पूर्ण परम्पराओं की उत्तराधिकारिणी इसी पीड़ित और पराधीन जाति में मानव-मुक्ति के अग्रदूत स्तालिन ने जन्म लिया है।

तिबलिस में सबसे पहले दीख पड़ा कि पुरुषों की वेश-भूषा बिल्कुल यूरोपीय है, परन्तु टाई प्रायः नहीं पहनी जाती। स्त्रियों की वेश-भूषा में पूर्वीय देशों की अलंकार-प्रियता वर्तमान है। मास्को की स्त्रियों की अपेक्षा यहाँ की स्त्रियाँ प्रसाधन की ओर अधिक ध्यान देती हैं। भोजन के क्षेत्र में ये लोग पूर्वीय हैं, हम लोगों की भाँति मसाले खाते हैं, हरी मिर्चें और कच्ची प्याज टेबुल की शोभा बढ़ाती हैं। रसोई में ईरानी प्रभाव है, पुलाव और कबाब खूब खाते हैं। यहाँ के मकानों, सामानों और कलाओं आदि पर भी ईरानी छाप स्पष्ट दीख पड़ती है। कुल २५ वर्ष हुए हैं, जब इन लोगों को पराधीनता और उसके अनिवार्य फल, दरिद्रता, अशिक्षा और कुसंस्कारों से तथा सामन्तकालीन गुलामी की दलदल से मुक्ति मिली है। परन्तु आज इनके शरीर और इनके मन पर पुरानी गरीबी और पुरानी भीरुता का कोई चिह्न नहीं है।

शिशु-पालनागार, अस्पताल, किंडर-गार्टन और संस्कृति-भवन आदि सब कहीं की भाँति यहाँ भी सुनियन्त्रित और सुपरिचालित हैं। जार्जिया की जन-संख्या ३३ लाख ही है परन्तु इनके विश्वविद्यालय और छात्रावास आकार-प्रकार और साज-सामान में भारत के किसी भी विश्वविद्यालय से बड़े हैं। जार्जिया के शिक्षा-मन्त्री ने बताया कि हम अपने राजस्व का आधा भाग शिक्षा पर व्यय करते हैं। हमारे बड़े कारखाने की आय से स्वास्थ्य और जन-कल्याण के दूसरे कार्य हो जाते हैं, इसीलिए शिक्षा पर इतना धन व्यय करना सम्भव हुआ है। पुलिस पर राजस्व का प्रतिशत सातवाँ भाग ही खर्च होता है!

पर्वत-शिखर के जिस प्रमोद-भवन में हम पहली बार गए थे, उसी पहाड़ पर बिजली की रेल (Finicular Railway) द्वारा चढ़े। सीधा और खड़ा मार्ग है, बदन सिहरने लगता है। गाड़ी से उतरकर हम लोग दाहिनी ओर अग्रसर हुए। छठी शताब्दी का एक पुराना गिर्जा है, अनेक मूर्तियाँ हैं। दीवारों पर कितने ही चित्र बने हैं। गिरजे के प्रांगण में कवियों और लेखकों की समाधियाँ हैं। एक ओर स्तालिन की माता की समाधि है, वे तिबलिस में ही अत्यन्त साधारण

रूप से रहती थीं। १९३७ में पर्याप्त वृद्धावस्था में उनका देहावसान हुआ है। समाधि काले संगमर्मर पत्थर की है, इस पर किसी प्रकार का आच्छादन नहीं है।

तिबलिस को स्तालिन की जन्म-भूमि होने का गौरव प्राप्त है, मार्क्सवाद की दीक्षा भी यहीं पर इसाई-पादरियों के स्कूल में ली थी। श्रमिकों में क्रान्ति की भावना भरन और उनका संगठन करने के लिए स्तालिन सन् १८९४ से १९०५ तक तिबलिस में ही रहे हैं। इस बीच में उन्होंने मजदूरों में ही रहकर काम किया, उन्होंने जेल की यात्रा की और जेल से भागकर तथा पुलिस की आँखों में धूल झोंक-कर बोल्शेविज़्म का प्रचार किया। १९०३ में जेल से भागकर स्तालिन ने एक गुप्त छापेखाने की प्रतिष्ठा की, जिससे निषिद्ध घोषित की गई पुस्तकें, सामयिक पत्रिकाएँ और विज्ञप्तियाँ आदि प्रकाशित होती थीं। रशियन, जार्जियन, आर्मे-नियन और अजरबेजाँ आदि कई भाषाओं में इस छापेखाने से सामग्री छपती थी। छापेखाने को ढूँढ़ने के लिए पुलिस दो वर्ष पागल रही। हमने यह छापाखाना भी देखा। एक ७० फुट गहरे कुए के बीच-बीच में सुरंग निकालकर मकान के नीचे गर्भ-गृह बनाया गया था। रस्सी की सीढ़ियों से काम करने वाले आते-जाते थे। हाथ से चलने वाला प्रेस और विभिन्न भाषाओं के अक्षर थे। सन् १९०६ की १५ अप्रैल को जार की पुलिस ने छापेखाने पर अधिकार कर लिया। इस मकान में अब एक संग्रहालय है।

तिबलिस वस्त्र-उद्योग का एक प्रधान केन्द्र है। हमने एक सूत और मौजा-बनियान का कारखाना देखा है। श्रमिकों के निवास और विश्राम की व्यवस्था तथा शिशु-पालनागार का निरीक्षण किया है। दिन-भर घूमते-घूमते थक गया हूँ, विश्राम करने के लिए एक बड़े उद्यान में आ गया हूँ। संध्या हो आई है, नर-नारियों के झुंड आ रहे हैं। बच्चों की संख्या और भी अधिक है। जगह-जगह बच्चों के खेलने के ठिकाने हैं। कहीं नृत्य और गीत हो रहा है, जैसे आनन्द-मेला लगा है—जीवन का परिपूर्ण प्राचुर्य झरने के जल की तरह विहँस रहा है।

उद्यान में बच्चों की एक-दो मील लम्बी रेलवे-लाइन है। सन् १९३५ में इस-का निर्माण हुआ है। दो-तीन वयस्क परिदर्शक हैं। परन्तु टिकट-बाबू स्टेशन-मास्टर, गार्ड और इंजन-ड्राइवर आदि सब छोटे-छोटे बच्चे ही हैं। गाड़ी के इंजिन का आकार अपने यहाँ की सिलिगुड़ी दार्जिलिंग लाइन की गाड़ियों-जैसा है। बच्चों को भड़कीली वर्दी पहनकर गुरु-गम्भीर ढंग से काम-काज करते देखकर हम लोग कौतुक से पुलकित हो गए। गाड़ी में एक रूबल देकर बैठा जाता है, मार्ग में चार स्टेशन हैं। हम लोग गाड़ी में बैठे। यात्रियों में लड़के और लड़कियाँ अधिक हैं परंतु वयस्क नर-नारियों का भी अभाव नहीं है। सीटी बजी और गाड़ी चल पड़ी।

एक किशोरी कण्डक्टर ने गम्भीर मुद्रा के साथ हमारे टिकटों की जाँच की। खेल तो दिलचस्प है ही। बच्चों को अभी से रेलवे का संचालन करने की व्यावहारिक शिक्षा भी मिल रही है।

सोलह

१६ जुलाई की सबेरे तिबलिस से गोरी के लिए यात्रा हुई। कुरा नदी के साथ-साथ बल खाती हुई सड़क पर मोटर चल रही है। पहाड़ में गाँव हैं। नदी के उस पार धान के छोटे-छोटे खेत दीख पड़ते हैं। खेतों में पानी रोकने के लिए मेड़ें उठाई गई हैं। तीस मील चलने पर कुरा नदी के दोनों तटों पर बसी हुई पुरानी राजधानी की बस्ती मिली। नदी पर रोमनों का बनाया हुआ पुल अब तक काम दे रहा है। पुराने दुर्ग की दीवारें खड़ी हैं। उनकी निर्माण-शैली भारत के मुगल-कालीन दुर्ग-प्राचीरों-जैसी है। प्राचीरों के भीतर एक बड़े गिरजे के सिवा और कुछ नहीं है। पाँचवीं शताब्दी में बने हुए इस गिरजे को एक हजार वर्ष बाद तैमूर-लंग ने लूटा था, फिर बहुत दिन तक उसकी मरम्मत नहीं हुई, पिछली शताब्दी में मरम्मत की गई। गिरजे में ईसा का एक गरदन तक का चित्र है। ऐसा जान पड़ता है कि चित्र की आँखें धीरे-धीरे मुँद रही हैं और खुल रही हैं। चित्रकार की कला प्रशंसनीय है।

चिनार और ओक के पेड़ों की छाया से ढके हुए एक गाँव में हमारी मोटर रुकी। नर-नारियों के झुण्ड हमें देखने आ गए। पेड़ों के नीचे भोज-सभा का प्रबन्ध है, खाद्य और पानीय का विपुल आयोजन है। जार्जियन आतिथ्य का उदार समारोह है। हमें जल्दी है, इसलिए केवल दो घण्टे बाद दुःख के साथ हमें बिदा दी गई। मोटर चली, पर्वतों के तरंगित शिखर, सुन्दर ग्राम, दिगन्त तक फैले हुए शस्य-क्षेत्र, श्यामल वन और दुर्धर्ष नदी को वश करके बनाया गया जल-विद्युत्-केन्द्र आदि देखते-देखते हम लोग स्तालिन की जन्म-भूमि गोरी पहुँचे।

गोरी किसी समय में छोटा सा कस्बा था, अब इसका रूप बिलकुल बदल गया है। पुरानी स्मृति को जगाने वाली एक ही चीज है. और वह है पूर्व की दिशा में पहाड़ के ऊपर बना हुआ दुर्ग। इसे बैजण्टायनों ने बनाया था। अब यह परित्यक्त और निस्तब्ध है। ग्रीकों, रोमनों, तुर्कों, मुगलों, ईरानियों और रशियनों के आक्रमणों में यह दुर्ग एक के अधिकार से दूसरे के अधिकार में गया है। दुर्ग के अतिरिक्त नगर में भवन और ट्राम, बस आदि सब-कुछ आधुनिक हैं, सामन्त-युग के सब चिह्न मिट गए हैं। तीर्थ-यात्रियों के लिए बड़े-बड़े होटल और पान्थ-निवास बन गए हैं। स्तालिन की जन्म-भूमि मानव-मात्र के लिए मुक्ति की कामना करने वालों का तीर्थ-स्थान ही तो है?

लाल और सफेद गुलाब के फूलों से भरा हुआ छोटा सा बगीचा है, एक ओर नीले पाइनों के पुञ्ज अस्तंगत सूर्य के प्रकाश में नील मेघों की भाँति चमक रहे

हैं। सामने संगमर्मर से बनी हुई चौकोर वेदी है, वेदी पर संगमर्मर के ही खम्भे हैं,ऊपर काँच की छत है, अगल-बगल में ईंट के दो छोटे-छोटे कमरे हैं, एक में किराये पर विसारियन दम्पति रहते थे, दूसरे में मकान-मालिक। विसारियन दम्पति में पति चर्मकार थे और पत्नी किसान की लड़की थी। दरिद्र श्रमजीवी की इसी कुटीर में जननी केथारिना ने १८७९ सन् की २१ दिसम्बर को अपनी चौथी सन्तान स्तालिन को जन्म दिया। माता की तीन सन्तानें सूतिकागार में ही मर चुकी थीं, चौथी जीवित रह गई। पिता अपने पुत्र को एक कुशल चर्मकार के रूप में देखना चाहते थे, माँ बच्चे को पढ़ा-लिखाकर पादरी बनाना चाहती थी, परन्तु इतिहास के अमिट विधान में कुछ और ही लिखा था। बहुनिन्दित और बहुवन्दित स्तालिन आज बीस करोड़ बन्धन-मुक्त नर-नारियों के नेता, गुरु और उपदेष्टा के रूप में उपस्थित हैं। संसार-भर के मानव-मुक्ति की इच्छा रखने वालों के श्रद्धेय मार्ग-दर्शक बन गए हैं।

कमरे में पुराना तख्तपोश और मैला बिछौना रखा है, वहीं लकड़ी के सन्दूक हैं, टेबुल पर खाने के साधारण बरतन, पानी का जग और मिट्टी के तेल की बत्ती रखी है। यही नर-केसरी स्तालिन का जन्म-स्थान है। मस्तक भ्रम से नत हो गया, जुड़े हुए हाथों ने अनजाने में ही ललाट को छू लिया। मैंने बंगला में स्तालिन का जीवन-चरित्र लिखा है, इस नाते यह मुझे दुर्लभ सौभाग्य प्राप्त हुआ है। कई वर्ष पहले गोरखपुर के निकट शाल-वन से घिरी हुई लुम्बिनी में गौतम बुद्ध के जन्म-स्थान को देखकर जिस प्रकार अनुप्राणित हुआ था, वैसे ही भावावेग से हृदय परिपूर्ण हो गया है। बीच में ढाई हजार वर्ष का अन्तर है; पृथक् मतों और आदर्शों को लेकर मानव-मुक्ति की कामना करने वाले दो महा-पुरुषों का अभ्युदय हुआ। बुद्धदेव की महिमा का कीर्तन करते हुए द्विजेन्द्रलाल ने कहा था, आधे संसार की भक्ति आज भी तुम्हारे चरणों में प्रणाम कर रही है। मैं यदि कहूँ कि बीसवीं शताब्दी का आधा संसार जीवित स्तालिन की वन्दना करता है तो निश्चय ही अत्युक्ति न होगी। प्रभात के भानु और मध्याह्न के मार्तण्ड में अन्तर होते हुए भी एक सम्बन्ध है।

मुझे आशंका है कि बुद्धदेव और स्तालिन का नाम एक साथ लेना भारत में कितने ही कानों को बेसुरा जान पड़ेगा। मेरे मन में उस समय जिन भावों का उदय हुआ था, वह मैं निःसंकोच भाव से कह रहा हूँ। मानव-सभ्यता के शैशव-काल से ही समाज की स्थिति के कुछ 'आइडिया' (धारणाएँ) सभ्यता के गति-पथ का नियन्त्रण करते आ रहे हैं। इनके विकास और विस्तार की धारा में कितना ही वैचित्र्य क्यों न हो, अनित्य संसार में इनका अपना स्वरूप एक नित्य वस्तु है। वैष्णव कवि ने कहा है, कि अपने स्वरूप का लोप कर देने से रूप का जन्म नहीं

होता । समाज के विवर्तनों, राजनैतिक और आर्थिक अवस्थाओं के परिवर्तनों की जड़ में एक आइडिया काम करता है । आइडिया कल्पना-लोक से लम्बी और कष्टकर पद्धति के द्वारा वास्तविक क्षेत्र में मूर्तिमान् होता है । विषमता के विरुद्ध, अधिकार-भेद के विरुद्ध और मनुष्य के लोभ-और दुर्विचार के विरुद्ध होने वाला नैतिक संग्राम प्रत्येक युग में रूपान्तरित होता रहा है । प्राचीन युग में जो आध्यात्मिक हृदयावेग था; वर्तमान युग में वही भौतिक समाजवाद है । वेद की भाषा में, "एकम् सद् विप्रा बहुधा वदन्ति" ।

बगीचे की एक बेंच पर बैठा हुआ देख रहा हूँ, अनेक देशों के नर-नारी स्तालिन की जन्म-भूमि देखने आए हैं । तीर्थ-दर्शन की स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए अपनी-अपनी फोटो उतरवा रहे हैं । तीन फोटोग्राफरों के लिए आय का अच्छा साधन बन गया है । हमारे देश में ही नहीं, सभी देशों के मनुष्यों में ऐसा आग्रह मिलता है । रोम के सेण्टपीट्स चर्च में भी मैंने यात्रियों को अपने फोटो उतरवाते देखा है । मानव-प्रकृति सब कहीं एक-जैसी है । हम लोग जो भाव लेकर पुरी, काशी और वृन्दाबन जाते हैं ये लोग वही भाव लेकर सुबृहत् सोवियत यूनियन के विभिन्न भागों से यहाँ आए हैं ।

बगल में ही स्तालिन-संग्रहालय है । स्तालिन के विद्यार्थी-जीवन और परिणत अवस्था के अनेक चिह्न सजाकर रखे गए हैं । फोटो और चित्र बड़ी संख्या में हैं । हम नहीं जानते थे कि किशोरावस्था में स्तालिन कविता भी करते थे । कविताएँ अवश्य प्रेम की नहीं, देश-प्रेम की होती थीं । पराधीनता की वेदना और जार्जियन राष्ट्रीयता ने स्तालिन के हृदय पर गहरी रेखाएँ खींची थीं ।

स्थानीय होटल में भोज का आयोजन है । गोगी के लेखक और कवि आए हैं, श्रमिक-संघ के नेता भी उपस्थित हैं । सुस्वादु सुराओं और अन्न-व्यञ्जनों का प्रचुर समावेश है; उच्छ्वसित भाषण इससे भी अधिक हैं । कई वक्ताओं ने भारत और सोवियत को सांस्कृतिक आदान-प्रदान का आग्रह प्रकट किया । हम भी पीछे नहीं रहे । बहुत दिनों के बाद गृहागत प्रियजन को देखकर जो आनन्द होता है ये लोग उसी आनन्द से विभोर हो रहे हैं । हजारों वर्ष पहले भारत और जार्जिया का पितृ-परिचय एक ही था, वह सम्बन्ध अब तक स्थिर है ।

सत्रह

गोरी से रात के दस बजे गाड़ी चली। हम लोग कृष्णसागर के बन्दरगाह और स्वास्थ्य-निवास सुकुमी देखने जा रहे हैं। चन्द्रालोक में नहाए हुए ग्राम, पर्वत और पाइन के वन एक अद्भुत शोभा से भर गए हैं। समतल भूमि पर रहने वाले बंगालियों में समुद्र और पर्वत के लिए एक विचित्र आकर्षण है। यही आकर्षण सौन्दर्योपासक बंगालियों को पुरी, दार्जिलिंग और शिलांग ले जाता है। दिन-भर के परिश्रम से पलकें भारी होती जा रही हैं। नींद टूटी; तो दीख पड़ा कि पूर्वाकाश रंगीन हो चुका है। मार्ग के दोनों ओर मकई के खेत हैं, ये लोग इसे 'भारतीय अनाज' कहते हैं। मकई सम्भवतः भारत से ही यहाँ आई है। एक दिन था जब दरिद्रों के लिए मकई प्रधान आहार था, जैसे अपने यहाँ विहार में अब तक है। अब मनुष्य इसे कभी-कभी स्वाद के लिए खाते हैं। अधिकांश में पशुओं के खाद्य के रूप में काम आता है।

गाड़ी कृष्णसागर के किनारे से चल रही है। स्थिर और नीले जल के विस्तार पर सफेद पालों वाली नावें तैरती हैं, छोटे स्टीमरों की मशीनों से जल में फेनिल तरंगें उठ रही हैं। पथरीली तट-भूमि पर समुद्र-स्नान से क्लान्त नर-नारी धूप ले रहे हैं, बच्चे झुंड बनाकर स्नान कर रहे हैं। कहीं-कहीं शरबत, कुलफी और फलों की दुकानें हैं। समुद्र के किनारे पर मेला लगा जान पड़ता है। रूस के विभिन्न प्रान्तों से श्रमिक सपरिवार स्वास्थ्य-निवास में आए हैं।

सबेरे दस बजे गाड़ी सुकुमी स्टेशन पर रुकी। जार्जियन सुन्दरियों ने पुष्प-गुच्छों द्वारा हमारा स्वागत किया। शत-शत कण्ठों से निकली हुई भारत की जय-ध्वनि वायुमण्डल में गूँज गई—"स्वाधीन भारत शान्ति-आन्दोलन का अग्रदूत हो।" सुदूर विदेश में अपनी जननी जन्म-भूमि की स्वाधीनता का गौरव अनुभव करते हुए मैंने कहा, हमारी जनता और हमारे नेता युद्ध-विरोधी हैं। शान्ति का इच्छुक स्वाधीन भारत किसी शक्ति-शिविर की पूँछ बनकर हिंसा और हत्या में भाग न लेगा।

समुद्र-तट के एक बड़े होटल में हम ठहरे हैं। बरामदे से देख रहा हूँ कि दोनों ओर जहाँ तक दृष्टि जाती है, समुद्र के तट पर बाँध बना है, उसके साथ-साथ पैदल चलने का रास्ता है फिर बगीचा और बड़ी सड़क है। घने अरण्य से ढके पहाड़ की नीलाञ्जन छाया गाढ़तर हो रही है। वारिधि के विस्तृत तट पर शुभ्र और समुन्नत सौध-मालाएँ दीख पड़ती हैं। सौन्दर्य-बोध और सुरुचि का चारों ओर सुन्दर समन्वय है। सुकुमी का 'बोटानिकल-गार्डन' देखने योग्य है। सन् १८८० में इस

का प्रारम्भ हुआ था। विभिन्न देशों के पेड़, फल, फूल, और लता, गुल्म आदि लाए और लगाए गये हैं। उद्‌भिद-विज्ञान का एक बड़ा गवेषणागार भी है। उद्यान में प्रवेश करते ही केले का पेड़ है, हल्के हरे रंग के लम्बे पत्ते हवा में हिल रहे हैं। सुना, केले का पेड़ यहाँ बड़े यत्न के बाद लग पाया है; परन्तु इसमें फल नहीं होते केवल पत्तों की बहार है। समझ में नहीं आया कि अनेक सुमिष्ट फलों के देश में केला निष्फल क्यों हो गया है।

एक पर्वत पर घूमते-फिरते हम उसके शिखर पर आ गए हैं। शंख-धवल विश्रामागार है। चारों ओर बगीचों की क्यारियाँ हैं। यह धनियों और कुलीनों का विलास-भवन नहीं, नव-जाग्रत सर्वसाधारण का आनन्द-निकेतन है। यहाँ से समुद्र-मेखला वाली सुकुमी नगरी हरे फ्रेम में बँधी तस्वीर-सी जान पड़ती है। सबेरे हम लोग प्रमोद-भ्रमण के लिए निकले। ५० मील लम्बा रास्ता है, पहाड़ पर चढ़ रहे हैं; जैसे देहरादून से मसूरी अथवा काठगोदाम से नैनीताल जाते हैं। पर्वत के गात्र पर पाइन का वन सीधा चला गया है। कल हास्य के साथ झरने भूमि की ओर लपक रहे हैं। देखते-देखते हम लोग ५००० हजार फीट की ऊँचाई पर पहुँच गए हैं। पर्वत-शृंगों से घिरा हुआ रित्सा-ह्रद है। अतुल-स्पर्शी नील जल स्थिर है। सह-कारी कृषि-क्षेत्रों और कारखानों से तरुणों और तरुणियों के झुण्ड लारियों और बसों में बैठकर आए हैं; अब मोटर बोट पर बैठकर ह्रद में घूम रहे हैं या डाँड़ वाली नावों पर 'बाइच' खेल रहे हैं। ह्रद के किनारे मद्य और खाद्य की दुकानें हैं। देख रहा हूँ कि ये लोग तेज शराब नहीं पीते हैं, अंगूर के रस से बनी रक्तिम सुरभित सुरा ही इन्हें प्रिय है। प्राचीन आर्यों के आसव-पान की परम्परा अब तक यहाँ चली आ रही हैं।

सुकुमी के चारों ओर कितने ही छोटे-बड़े स्वास्थ्य-निवास और आरोग्य-शालाएँ देखी हैं। ये सब विभिन्न रिपब्लिकों और विभिन्न यूनियनों ने बनवाई हैं। इनमें गरगरी का स्वास्थ्य-निवास सबसे बड़ा है। स्वास्थ्य-निवास और आरोग्य-शालाएँ सब कहीं साथ-ही-साथ बनी हैं। स्वास्थ्य-निवासों में श्रमिक किसान और बुद्धिजीवी, विश्राम तथा भ्रमण द्वारा मनोविनोद करते हैं। आरोग्य-शालाओं में रोगी रहते हैं; उनके लिए आहार, शुश्रूषा और चिकित्सा की व्यवस्था की गई है और इन सबके लिए उन्हें कुछ भी खर्च नहीं करना पड़ता। जल-चिकित्सा के विभिन्न धारा-यन्त्र प्रत्येक में हैं और सब-के-सब सर्वसाधारण के लिए खुले रहते हैं। ग्रीष्म-काल के कारण स्वास्थ्य-निवासों में अनेक प्रान्तों से नर-नारी आए हैं। स्वास्थ्य-निवासों और आरोग्य-शालाओं में सुख और सुविधा की जैसी व्यवस्था है, जैसे यन्त्र लगे हैं और जैसे साज-सामान का प्रबन्ध किया गया है, हमारे देश की मध्यम श्रेणी तो वैसी चीजों से लाभ उठाने का विचार तक नहीं कर सकती,

धनियों के लिए यह सब दुर्लभ ही है।

हमारे देश में ऐसी कल्पना करना कठिन है कि मुट्ठी-भर अन्न के लिए जो लोग सबेरे से शाम तक परिश्रम करते हैं या कारखानों में अपना सारा खून सुखा डालते हैं और बदले में किसी प्रकार जीवित रहने भर की मजदूरी पाते हैं, उन्हें भी विश्राम, शिक्षा और स्वास्थ्य लाभ करने का अधिकार है। यहाँ शिक्षा की भाँति स्वास्थ्य और आरोग्य-लाभ की व्यवस्था सर्वव्यापी है। सोवियत सरकार इस विषय में बहुत सतर्क और सजग रहती है कि कोई भी व्यक्ति अस्वास्थ्यकर अवस्था और चिकित्सा के अभाव में अपने प्राण न खो दे। हमें अपनी राजधानी के हस्पतालों से लौटाये गए रुग्ण नर-नारियों के हताशा से मलिन मुख याद आ रहे हैं, और याद आ रहे हैं दरिद्रतम देश में ६४) की फीस माँगने वाले डॉक्टरों के प्रसन्न मुख-मण्डल। जनाकीर्ण बस्तियों के बन्द कमरों में कितने ही व्यक्ति यक्ष्मा से मर जाते हैं और कितने ही व्यक्तियों को मार डालने वाली परिस्थिति पैदा कर जाते हैं। हमारे देश में कुछ धर्मार्थ चिकित्सालय अवश्य हैं और इस ओर भी हमारा पर्याप्त ध्यान रहता है कि सरकार और दयालु धनिकों के खैराती और बाजारू मिक्स्चर पिये बिना कोई न मरे, परन्तु यहाँ सब कहीं जन-साधारण को बिना मूल्य दिये ही औषधि और बिना फीस दिये डॉक्टर प्राप्त होता है—राज-प्रासाद-जैसी ये आरोग्य-शालाएँ भी सबके लिए सुलभ हैं और यह क्या केवल आरोग्य-शालाएँ हैं? मनुष्य इनमें पारस्परिक मेल-मिलाप का आनन्द ही प्राप्त करता है। जार के साम्राज्य में ये लोग एक दूसरे से कटे हुए और परिचय-विहीन थे। विभिन्न और विचित्र जातियों वाले इस महादेश में पारस्परिक मेल-मिलाप का कोई भी सुयोग न था। आज यूक्रेन की खान में काम करने वाले मजदूर के पड़ोस में मंगोलिया का स्कूल-मास्टर निवास करता है।

ब्रिटिश-साम्राज्यवाद का कठोर बन्धन जिस प्रकार हमारी हड्डियाँ तोड़ कर और हमें पीस कर पंगु बना गया है, उसी प्रकार जार के शासन ने इन लोगों की भी दुर्दशा कर डाली है किन्तु ये लोग पुरानी व्यवस्था को जड़ से उखाड़कर फेंक देने में समर्थ हो गए हैं। इसलिए आत्म-बल के चमत्कार से तनकर खड़े हो गए हैं। और हमने प्राचीन शासन-यन्त्र पर त्रिसिंह अंकित मूर्ति की मुहर लगाकर उस नौकरशाही को उसे चलाने का भार दे दिया है, जो आत्म-सम्मान बेचकर विदेशियों की गुलामी करती रही, जो स्वयं अश्रद्धेय है वह अपने राष्ट्र को श्रद्धा करने योग्य चरित्र-बल कहाँ से प्राप्त करेगा। यहाँ जो कुछ हम देख-सुन रहे हैं उससे स्पष्ट होता है कि ब्रिटिशकालीन 'ला एण्ड आर्डर' की मनुष्य पीसने वाली चक्की को जब तक भारत-सागर में विसर्जित न किया जायगा, तब तक लम्बे अस से अपमानित और उपेक्षित जन-साधारण का कल्याण नहीं हो सकता। कार्य निःसंदेह दुःसाध्य है परन्तु इसके सिवा कोई दूसरा मार्ग भी नहीं दीख पड़ता।

अठारह

हम लोग युगदिदि में हैं। ये लोग इसे गाँव कहते हैं परन्तु हम इसे शहर से भी बड़ा देख रहे हैं। सुकुमी से गाड़ी ढाई घण्टे में यहाँ पहुँची है। वर्षा के बीच में ही हम पान्थ-शाला में आए हैं। प्रशस्त सड़कें बिजली के प्रकाश से जगमगा रही थीं। सबेरे उठा तो देखा कि सामने उद्यान है और उसके किनारे पर बड़ी-बड़ी दुकानें हैं। कृषक-रमणियों के झुण्ड सौदा खरीद रहे हैं। कोई बेचने के लिए अपनी काँख में सुअर का बच्चा दबा लाई है। भ्रम हो रहा है कि कलकत्ते के चौरंगी बाजार की फैन्सी दुकानों पर मेम साहिबें माल खरीद रही हैं। हमारे साथी अब तक सो रहे हैं, घूमने के लिए अकेले ही निकल आया। यहाँ की स्त्रियाँ मास्को की स्त्रियों-जैसी नहीं हैं, पोशाक और प्रसाधन में परिपाटी पसन्द करती हैं, अलंकार भी खूब पहनती हैं। एक दुकान पर काफी भीड़ लगी है। घड़ियों की दुकान है और घड़ियाँ मरम्मत कराने वालों की भीड़ लगी है, हाथ में बाँधने वाली घड़ियाँ अब विश्व-व्यापिनी हो गई हैं। यहाँ के तरुणों और तरुणियों के हाथों में सोने की बकलस वाली घड़ियाँ बहुत दीख पड़ रही हैं। मार्ग में कितने ही व्यक्तियों ने मुस्कराकर अभिवादन किया है, मैंने भी मुस्कराकर ही नमस्कार कर लिया है, वार्तालाप करने का कोई उपाय नहीं है। बगीचे की बेंच पर बैठ गया हूँ, बगल में एक सज्जन आराम के साथ धूम्र-पान कर रहे हैं। मुझे देखते ही चिर परिचित की भाँति बातें करने लगे हैं। मैं बार-बार कह रहा हूँ, 'इण्डिस्की', (हिन्दी) परन्तु ये सुनते ही नहीं अपनी तरंग में अपनी ही कहे चले जा रहे हैं। भाग्य से हमारे साथी अनातोली आ गए हैं उनसे मालूम हुआ कि कामरेड अपने गाँव की उस समृद्धि का गुण-गान कर रहे हैं जो चाय के बगीचे की कृपा से हुई है।

हमने चाय के दो बगीचे और चाय बनाने का एक कारखाना देखा है। हमारे देश की तराई में जैसे चाय के बगीचे होते हैं वैसे ही यहाँ भी हैं। कारखाने में चाय की कच्ची पत्तियों को जिन प्रणालियों से सुखाया जाता है वे सब भी हमें दिखाई गई हैं। ऐसे कारखाने हमारे देश में भी हैं परन्तु हमारे देश-जैसे कुली और कुलियों की बस्तियाँ यहाँ नहीं हैं। चाय के बगीचों और कारखानों में काम करने वाले महलों जैसी इन अट्टालिकाओं में रहते हैं जो बगीचों और कारखानों के साथ ही बनी हैं। इन अट्टालिकाओं के अतिरिक्त छोटे-छोटे व्यक्तिगत अर्थात् पारिवारिक घर भी हैं, क्लब, नाच-घर, थियेटर, शिशुपालनागार और किंडर-गार्टन आदि की पूरी व्यवस्था है। चाय की पत्तियाँ स्त्रियाँ ही तोड़ती हैं। एक कारखाने में ईंट के थक्के-जैसी चाय बनती है। ये मंगोलिया, कजाकिस्तान और

साइबेरिया भेजी जाती है ।

युगदिदी के चारों ओर सहकारी कृषि-क्षेत्र हैं । इन खेतों की बदौलत ही गाँव शहर बन गया है । गाँव का संग्रहालय देखकर विस्मय होता है । प्रस्तर-युग से लगाकर आधुनिक काल तक की कितनी ही ऐतिहासिक सामग्री इन लोगों ने संग्रह की है । जार्जियन कुटीर-शिल्प और चित्र-कला के नमूने बहुत बड़ी संख्या में हैं । एक कमरे में स्थानीय सामन्त-राज्य की विलास-वस्तुएँ आदि रखी हैं । नैपोलियन द्वारा व्यवहृत कुर्सी और टेबुल पेरिस से खरीदकर लाया गया है । शिल्प, खनिज, सम्पत्ति, संस्कृति और ललित का एक साथ परिचय मिल रहा है । एक स्थान पर जारकालीन धनाढ्यों और सामन्तों के मूल्यवान् बर्तन और स्फटिक के पान-पात्र सजाए गये हैं, उसी की बगल में किसानों के मिट्टी के मैले बर्तन रखे हैं । पुराने और नये दिनों का अन्तर क्षण-भर में स्पष्ट हो जाता है ।

संग्रहालय की बगल में खेल का मैदान है । तीन खण्ड के स्टेडियम में लगभग पन्द्रह-बीस हजार आदमी बैठ सकते हैं, गाँव के भाग्य में भी यह लिखा गया है ? मैदान में पहले फुटबाल खेला गया फिर काकेशियनों का राष्ट्रीय खेल घुड़-दौड़ हुआ । अपनी राष्ट्रीय पोशाक से सजे हुए पुरुषों, नारियों और किशोरों ने दौड़ते हुए घोड़ों पर कई दुस्साहस-पूर्ण करतब दिखाए । शत्रु के व्यूह में प्रवेश करने, भाले फेंकने, लौट आने और शत्रु द्वारा पीछा करने आदि को दर्शकों ने अपनी करतल-ध्वनि से प्रोत्साहित किया । लगभग पचास अश्वारोहियों के आगे नब्बे वर्ष का एक वृद्ध पताका लिये चल रहा है, उसके शुभ्र-केश और श्वेत दाढ़ी हवा में उड़ रही है, देखकर आश्चर्य होता है, इस देश के नर-नारी दीर्घजीवी होते हैं । अस्सी-नब्बे वर्ष की आयु में भी युवकों जैसी कार्य-शक्ति रखते हैं ।

संध्या आ रही है, हम एक बड़े और सहकारी कृषि-क्षेत्र में पहुँचे हैं, इस का नाम 'बेरिया खोल कोज' है । बेरिया बोल्शेविक आन्दोलन में स्तालिन के दाहिने हाथ थे । अब सोवियत रूस के एक मन्त्री हैं, आप जार्जिया के एक प्रमुख नेता हैं ।

संचालक ने जो कृषि-क्षेत्र का परिचय दिया वह साधारणतया इस प्रकार है—सन् १९३० में ५७ परिवारों और १७९ हजार रूबल लेकर इस कृषि-क्षेत्र का प्रारम्भ हुआ है । १९५१ में परिवारों की संख्या २७० हो गई है और सम्पत्ति का मूल्य ११० लाख ६ हजार रूबल पर पहुँच गया है । पहले केवल मक्की बोई जाती थी, सोवियत कृषि-विज्ञानिकों की सहायता से चाय और फलों की खेती भी शुरु हुई है । अब चाय, अंगूर, तथा दूसरे फल, सब्जी और मकई की खेती होती है । भूमि १५८० हैक्टर है (एक हैक्टर=२.४७ एकड़) । सहकारी और व्यक्तिगत रूप में पशु-पक्षी भी पाले जाते हैं । दूध देने वाली सहकारी गायों की

संख्या ८७४ है।

१९५० में कृषि-क्षेत्र की कुल आय ९ हजार लाख रूबल रही है। एक व्यक्ति को दैनिक मजदूरी ४२ रूबल दिये जाते हैं। वेतन और बोनस मिलाकर कृषकों को ५ हजार लाख ७९ हजार रूबल मिले हैं। दो लाख पचास हजार रूबल सरकारी टैक्स में दिये गए हैं, शेष धन अस्पताल, स्कूल और क्लब के लिए खर्च हो रहा है। सहकारी परिवारों के बीस लड़के-लड़कियाँ विश्वविद्यालय में पढ़ते हैं उनका खर्च दिया जाता है। वेतन और भत्ते के अतिरिक्त प्रत्येक परिवार को वर्ष-भर में दो टन अनाज भी मिलता है। घरेलू पशुओं और फलों तथा सब्जी के बगीचों से अतिरिक्त आय भी होती है। कृषि-क्षेत्र में ४० 'सोशलिस्ट हीरो' और २१ सम्मानित पदकधारी हैं।

हमने चारों ओर घूमकर विभिन्न संस्थाएँ और कृषकों के घर तथा उनका सामान आदि देखे। सफाई और सफलता की चमक सर्वत्र मिली। ७० वर्ष के एक वृद्ध कृषक ने पुराने दिनों की एक कहानी सुनाई। उन्होंने कहा, बोल्शेविकों ने जब प्रस्ताव किया था कि ऐसे काम न चलेगा, सहकारी कृषि-क्षेत्र बनाने पड़ेंगे, तब गाँव का वातावरण तीव्र आलोचनाओं से गरम हो गया था। लोग कहने लगे अपनी जमीन न होगी तो कोई मन लगाकर खेती भी न करेगा, सब बर्बाद हो जायगा। ऐसी असम्भव बात भी किसी ने सुनी है कि सब मिलकर सारी जमीन के मालिक बनेंगे। जिनके पास जमीन नहीं थी; और जो बटाई पर खेती करते थे मालिक बनने के लोभ से वे राजी हो गए। छोटे-छोटे किसानों ने भी अर्ध-सम्मति दी, लेकिन 'कुलाकर' (जोतदार) किसी तरह भी राजी नहीं हुए, आखिर सभा बुलाई गई। नौजवान बोल्शेविकों ने सहकारी कृषि-क्षेत्र और मशीन की सहायता से वैज्ञानिक ढंग से खेती करने की खूबियों का वर्णन किया, परन्तु मशीन से खेती करने, मशीन से फसल काटने और मशीन से अनाज माँड़ने की अनहोनी बातों पर कोई विश्वास करने को तैयार न था। भाषण समाप्त होने पर एक पुराने किसान ने कहा—"तुम लोग शहरों के लड़के हो, किताबों में पढ़ी हुई बातें करते हो, हमारी हालत नहीं जानते। मैं अभी मर नहीं गया लेकिन मेरे दोनों लड़के जमीन का बटवारा करने की बातें कर रहे हैं, बेटों की बहुएँ उनसे भी आगे हैं, घोड़े, गाय, बैल, बत्तखें और मुर्गियाँ सब बाँट ली गई हैं, भेड़ें तीन हैं इसलिए उनके बटवारे पर विवाद हो रहा है। छोटी बहू कहती है कि एक भेड़ा कसाई की दुकान पर बेच दिया जाय और जो रुपया मिले वह बाँट लिया जाय, एक माँ के पेट के दो भाई जहाँ एक साथ मिलकर खेती नहीं करना चाहते, वहाँ तुम सारे गाँव को एक साथ मिलाकर खेती कराना चाहते हो?"

धीरे-धीरे वह असम्भव भी सम्भव हुआ। थोड़ी सी जमीन और कुछ परि-

वारों को मिलाकर काम शुरू किया गया, मशीनी हल मँगाया गया, खेती की नई पद्धति और उसकी उपज को देखकर धीरे-धीरे लोगों को विश्वास होने लगा कि बोल्शेविक अच्छी बात कहते हैं। बाबा आदम के जमाने से चली आई खेती की व्यवस्था को बदलने में हमें अपनी बुद्धि-हीनता के कारण काफी कष्ट झेलने पड़े हैं परन्तु अब हम यन्त्र-युग में आ गए हैं, आज तुम हमारा घर देख रहे हो, पहले यहाँ हमारे बाप-दादे का बनाया हुआ मिट्टी का घरौंदा था, मेरा बचपन उसी अन्ध-कूप में भेड़ों और बकरियों के साथ सोने में बीता है। अब हमारे बच्चे स्कूल में पढ़ते हैं, क्लब में गाने गाते हैं, रंगीन पोशाकें पहनकर नाचते हैं, मेरी नातिन तिबलिस के कृषि-विज्ञान कालिज में पढ़ती है। प्राचीन काल के दुःख-दारिद्रय और अब की खुशहाली की बातें करते-करते वह मुखर हो गया है। हमने पूछा, "अब क्या आप लोगों में कलह नहीं होता ? कोई कमचोरी करता है तो आप क्या करते हैं ?"

वृद्ध ने उत्तर दिया, मतभेद तो होते ही रहते हैं परन्तु सम्बन्ध काम से नहीं काम की पद्धति से होता है, वे सब हम लोग आपस में निपटा लेते हैं, जो नहीं निपटते उनके लिए संचालक को मध्यस्थ बना लेते हैं और उन्हें निपटा लेते हैं। काम से जी चुराने का सवाल ही नहीं उठता, क्योंकि हमारे काम जी उबाने वाले नहीं हैं, जो असमर्थ होते हैं उनसे कम परिश्रम लेने की व्यवस्था है।

पाइन के वृक्षों से घिरे और हरी घास से ढके, खुले मैदान में हमें बिदा करने के लिए विराट् भोज हो रहा है। हम लोगों के साथ डेढ़ सौ नर-नारी गोलाकार बैठे हैं। ५०० आदमियों के खाने योग्य मछली, मांस, रोटी, पनीर और विविध व्यञ्जन जमा किये गए हैं। सुमिष्ट सुराओं का कहना ही क्या है ! बैलों के सींग-जैसी बड़ी-बड़ी सिगाओं के खोलों में मद्य-पान की व्यवस्था है, भोज-सभा के नेता (तमादा) ने मद्य की तीन बोतलें एक सिंगा में ढालीं और वह एक साँस में ही खाली कर दी। मैं तो हैरान रह गया, अतिथियों के लिए भी यही व्यवस्था है, असमर्थता प्रकट करके मैंने किसी तरह छुट्टी पाई। जार्जियन युवक-युवतियों ने सुसज्जित होकर नृत्य-गीत आरम्भ किया, वाद्य-यन्त्र, ताल-स्वर और संगीत की मूर्छना में भारतीय आभास है। प्रेयसी के हृदय पर विजय प्राप्त करने के लिए तलवार उछालते हुए नाचने की बलिष्ठ सुषमा अच्छी लगी। सुगठित शरीर वाली दीर्घांगी, गौरवर्णा और शुभ्रवसना तरुणियों का समवेत संगीत तथा लोक-नृत्य एक टक तन्मय होकर देखने लगा। इनके अंग-प्रत्यंग से जीवित जाति के प्राणों का प्राचुर्य छलक रहा है, पद-क्षेप की दृढ़ भंगिमा में सचल-शक्ति की गति के छन्द खेल रहे हैं। मैं रूपवती संध्या के इस आनन्दोत्सव में विभोर हो रहा था कि कामरेड अकसाना देवी का परिचित आह्वान सुन पड़ा "पाशली-पाशली"—बिदा होने का समय हो गया है।

उन्नीस

लेखक-संघ और नागरिकों द्वारा दिया गया बिदाई-भोज रात को तीन बजे समाप्त हुआ। रात के पिछले पहर में ही हम लोग तिबलिस से हवाई जहाज द्वारा रवाना हो गए और २४ जुलाई की शाम को ४ बजे मास्को लौटे। मूसलाधार वर्षा हो रही थी, ठण्डी हवा हड्डियों तक पहुँचती थी और सारे शरीर को कँपा देती थी। नेशनल होटल के चिर-परिचत कमरे में पहुँचकर सुख की साँस ली। चाय पीते-पीते खिड़की से बाहर की ओर देखा, तो वर्षा से नहाए हुए पेड़ हिल रहे हैं। सड़कों पर फूलों की रौनक दूनी हो गई है। धूसरित आकाश के नीचे अपनी अटलोन्नत महिमा में मग्न क्रेमलिन प्रासाद-दुर्ग खड़ा है और धारा-स्नान कर रहा है। मार्ग जन-हीन है। वर्षा में भीगे हुए कलकत्ते की याद आ रही है, बचपन से ही देखता चला आ रहा हूँ कि साधारण वर्षा से ही मध्य कलकत्ते में कमर तक पानी भर जाता है। दफ्तरों से लौटते हुए बाबू, कालिजों के विद्यार्थी और दूसरे सब भले आदमी लाँग चढ़ाये और जूते हाथों में उठाये सँभल-सँभलकर चल रहे हैं। युवावस्था में समाचार-पत्रों में कितना ही विलाप किया है परन्तु कोई परिणाम नहीं निकला। इंजिनियरिंग की कला पराकाष्ठा पर पहुँच गई है। परन्तु महानगरी की सड़कों पर भर जाने वाले पानी को निकालने की व्यवस्था नहीं हो सकी। क्यों नहीं हो सकी ? हम सहन करते हैं इसलिए नहीं हो सकी। कारपोरेशन को चुपचाप टैक्स अदा कर देते हैं परन्तु साधारण अधिकार की माँग भी नहीं करते। १६२३ में देशबन्धु चितरंजन कारपोरेशन के मेयर चुने गए थे, तब उन्होंने कहा था कि श्यामबाजार और चौरंगी में कोई अन्तर न रहने दूँगा परन्तु अन्तर अब तक वर्तमान है। अधिकारियों को जब तक सोचने के लिए विवश न कर दिया जाय तब तक वे सोचने का कष्ट क्यों करें ! इसीलिए चौरंगी के अँगरेजी मुहल्लों की सड़कों पर गड्ढे तो दूर रहे पत्ते तक पड़े नहीं दीख पड़ते। फूलों और हरे-भरे मैदानों से वातावरण मनोरम बना रहता है। दूसरी ओर हमारे मुहल्लों की सड़कें छोटे-बड़े गड्ढों की योगफल बनी माता-पिता-विहीन अनाथ की भाँति चित्त पड़ी हैं। हम स्वभाव से आलसी हैं इसलिए सब-कुछ बर्दाश्त कर लेते हैं। पुस्तकों का यह तथ्य हमारे मस्तिष्क की तर्क-बुद्धि को तेज करने वाला चर्म ही रह गया है आत्म-रक्षा का वर्म नहीं बना, कि स्वाधिकार मनुष्य-मात्र का जन्म-जात अधिकार है। इसीलिए हमारी राजनैतिक स्वाधीनता पराधीनता के पंक में औंधे मुँह पड़ी रही। अनेक दुःखों को जो लोग भाग्य का फल मानकर, निरुपाय भीरुता के साथ चुपचाप सह लेते हैं उनकी मानसिक दासता जब तक दूर नहीं होती तब तक किसी भी दुःख और किसी भी कष्ट का

प्रतिकार नहीं हो सकता।

यूरोप के इतिहास में मनुष्य ने कितने ही रक्त-पातों से निकलकर मुक्ति प्राप्त की है—इसकी परिपूर्ण और प्रबल मूर्ति रूस में प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। आचार-विचार और विधि-विधान से पूर्णतया बँधा हुआ मनुष्य धर्म के मोह में आच्छन्न था और अपने-आप पर ही अश्रद्धा करता था। गुलाम ढालने वाले इस कारखाने को इन लोगों ने धूलिसात् कर दिया है इसीलिए इन्हें युक्ति-हीन और युक्ति-विरुद्ध प्रथाओं के बन्धन से मुक्ति मिल गई है। इस मुक्ति का विस्तार और आनन्द इनके सामाजिक जीवन में चमक रहा है। विद्वेष से अन्धा व्यक्ति ही कह सकता है कि ये लोग बाहर की किसी अन्धी बाध्यता से परिचालित होते हैं।

मास्को में इस बार हम विख्यात स्तालिन आटोमोबाइल-फैक्टरी देखने गए। अनेक विभागों में विभक्त विशाल कारखाना है, कारखाने के तीन प्रमुख विभागों से हर साढ़े तीन मिनट के बाद एक बस, मोटर या लारी बनकर बाहर आ जाती है। यह देखने में बहुत समय लगा कि विभिन्न विभागों में बने हुए खण्ड किस प्रकार जोड़े जाते हैं। श्रमिकों में पुरुष भी हैं और स्त्रियाँ भी हैं परन्तु भट्टियों और हथौड़ों पर स्त्रियाँ नहीं लगाई जातीं। हमने श्रमिकों के परिश्रम और सीमा के सम्बन्ध में प्रश्न किया। एक रसिक श्रमिक ने उत्तर दिया, छोटे गुलाम से काम कराने के लिए यहाँ चाबुक वाले बड़े गुलाम की जरूरत नहीं है। ट्रेड-यूनियन द्वारा बाँधे हुए नियमों पर हम लोग काम करते हैं। काम घड़ी के काँटे की तरह चलता है।

इस कारखाने का 'हाउस ऑफ कल्चर' या संस्कृति-भवन एक विशाल सिलसिला है। विराट् प्रासाद के बड़े-बड़े हॉलों में चित्रकारी, जिल्दसाजी और हाथ के ऐसे ही अनेक कामों के सिखाने की व्यवस्था की गई है, खेलों द्वारा मनोविनोद का भी पर्याप्त प्रबन्ध है। श्रमिकों के बच्चों को यहाँ शिक्षा और आमोद-प्रमोद दोनों ही प्राप्त होते हैं। एक बड़े हाल में बच्चे और बच्चियाँ अनेक प्रकार के खिलौनों में मस्त हैं, भाषा द्वारा इस दृश्य का सौन्दर्य प्रकट नहीं किया जा सकता। छोटों और बड़ों के लिए दो सिनेमा-हॉल तथा रंगमंच हैं, इनके बाद पुस्तकालय हैं। श्रमिकों के लिए टेक्नोलॉजी अर्थात् यन्त्र-विज्ञान की शिक्षा लेकर उन्नति करने की व्यवस्थाएँ भी पर्याप्त हैं। इस देश में जितने भी कारखाने देखे हैं उन सबके साथ ये सब चीजें जुड़ी हैं। शिशु-पालनागार, किंडर-गार्टन, प्रसूति का भवन और चिकित्सालय तो हैं ही, कृषकों और श्रमिकों के राष्ट्र में ये सब सुविधाएँ न होंगी तो और कहाँ मिलेंगी? अब इन सब चीजों को देखकर अवाक् नहीं होता!

हम लोग अखिल रूसी ट्रेड-यूनियन के केन्द्रीय कार्यालय में पहुँचे। कार्यालय कलकत्ते के डलहौजी स्क्वायर में ईस्ट-इंडिया कम्पनी के बड़े और पुराने दफ़्तर से तीन गुना बड़ा है। इसे समाजवादी समाज में श्रमिकों के निर्माण-कार्य को नियन्त्रित

करने वाला स्नायु-केन्द्र कहना चाहिए। हम एक बड़े हॉल में इकट्ठे हुए। चार-पाँच वयस्क श्रमिक-नेताओं ने हमारा स्वागत किया। वार्तालाप में मालूम हुआ कि ६६ प्रकार के विभिन्न कारखानों, शिल्प-केन्द्रों, दफ्तरों और शिक्षणालयों से निर्वाचित प्रतिनिधि लेकर केन्द्रीय समिति बनाई गई है। श्रमिकों, शिक्षकों और क्लर्कों की कुल संख्या ३ करोड़ ९० लाख है; इनमें तीन करोड़ ट्रेड-यूनियन के सदस्य हैं। शाखाओं और क्षेत्रीय श्रमिक-संघों में वर्ष में दो चुनाव होते हैं। केन्द्रीय समिति यन्त्रों की उन्नति, शारीरिक परिश्रम में कमी, श्रमिकों की मर्यादा, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा सांस्कृतिक उन्नति के प्रश्नों पर विचार करने के बाद सुधार करने के लिए प्रस्ताव उपस्थित करती है। जन-साधारण का समर्थन प्राप्त होने पर विभिन्न औद्योगिक संस्थाएँ यह प्रस्ताव मान लेती हैं, और सरकार कानून में तदनुसार संशोधन कर लेती है।

ट्रेड-यूनियनों के सदस्य अपनी आमदनी का एक अंश मासिक चन्दे के रूप में देते हैं। इसके अतिरिक्त कारखाने और सरकार निश्चित औसत में धन देते हैं, इस धन से ट्रेड-यूनियन इस समय ६ हजार ५ सौ संस्कृति-भवन, शिक्षालय और क्लब, नब्बे हजार छोटे-बड़े लाल क्लब और ८ हजार ५ सौ पुस्तकालय तथा पाठागार परिचालित करती है। पुस्तकालयों में पुस्तकों की संख्या ५ करोड़ है। श्रमिक यदि बुढ़ापे और रोग के कारण अकर्मण्य हो जाते हैं तो स्पेशल इंश्योरेंस भण्डार से उनके भरण-पोषण और चिकित्सा आदि का प्रबन्ध किया जाता है।

ट्रेड-यूनियन के नियम या श्रमिकों के कर्तव्य और अधिकार निश्चित रूप में विधिबद्ध हैं।

१. कारखानों, दफ्तरों और ऊँचे विद्यालयों में काम करने वाले अथवा कारीगरी या किसी विशेष वृत्ति की शिक्षा प्राप्त करने वाले सोवियत राष्ट्र के नागरिक ट्रेड-यूनियन के सदस्य हो सकते हैं।

२. ट्रेड-यूनियन के सदस्यों को ये सब अधिकार प्राप्त हैं:—

(क) ट्रेड-यूनियन की साधारण सभाओं में सम्मिलित होना;

(ख) यूनियन की संस्था, सम्मेलन और कांग्रेस के लिए प्रतिनिधि निर्वाचित करना और प्रतिनिधि निर्वाचित होना;

(ग) यूनियन के काम की उन्नति के लिए प्रस्ताव आदि उपस्थित करना;

(घ) ट्रेड-यूनियन की सभा, समिति, कांग्रेस अथवा समाचार-पत्रों में स्थानीय अथवा उच्चतर यूनियनों के पदाधिकारियों के सम्बन्ध में आलोचना करना, प्रश्न उठाना, वक्तव्य देना, अथवा अभियोग उपस्थित करना;

(ङ) परिचालक वर्ग के जो लोग पारस्परिक समझौते को भंग करने अथवा प्रचलित श्रमिक-कानून, स्पेशल इंश्योरेंस और सांस्कृतिक तथा जन-हित के विधि-

बद्ध नियमों को तोड़ने के अपराधी हों, उनके संबंध में ट्रेड-यूनियनों से न्याय की माँग करना;

(च) किसी के काम-काज या आचरण के सम्बन्ध में यूनियन जब कोई सम्मति प्रकट करे तब वहाँ व्यक्तिगत रूप में उपस्थिति की माँग करना;

३. यूनियन के प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है:—

(क) नागरिक और श्रमिक मर्यादा का पूरे तौर से पालन करना;

(ख) सोवियत-पद्धति के अटल आधार, जन-साधारण और समाजतांत्रिक सम्पत्ति, देश के ऐश्वर्य और शक्ति के उत्स श्रमजीवियों की संस्कृति और समृद्धि की जीवनी-शक्ति के मूलाधारों को, निरापद रखना और उनकी रक्षा करना;

(ग) अपनी वृत्ति के कौशल में परिपूर्ण होना और अपनी योग्यता को निरन्तर समुन्नत करना;

(घ) अपने श्रमिक-संघ के नियमों को मानकर चलना और नियमित रूप से चन्दा देना।

४. प्रत्येक सदस्य निम्न लिखित सुविधाएँ प्राप्त करने का अधिकारी है:—

(क) राष्ट्र के सोशल इन्श्योरेंस-भण्डार के जो सदस्य नहीं हैं उनकी अपेक्षा सदस्यों को अधिक आर्थिक सहायता प्राप्त होगी। यह सहायता राष्ट्र के कानून के अनुसार ही मिल सकेगी।

(ख) विश्रामागार, सेनेटोरियम और स्वास्थ्य-निवास आदि में जाने के लिए आज्ञा-पत्र प्राप्त करने और बच्चों को शिशुपालनागार, किंडरगार्टन और तरुणों को पायोनियर्स-शिविर में भेजने का अग्राधिकार होगा,

(ग) ट्रेड-यूनियन के भण्डार से आवश्यकतानुसार सहायता मिलेगी;

(घ) श्रमिक-संघ द्वारा निःशुल्क कानूनी सलाह दी जायगी;

(ङ) प्रत्येक सदस्य के परिवार वाले निश्चित नियमों के अनुसार सांस्कृतिक और खेल-कूद की संस्थाओं में भाग ले सकेंगे।

(च) अपने श्रमिक-संघ की पारस्परिक सहायक-समिति का सदस्य हो सकेगा।

कहना व्यर्थ है कि श्रमिकों के कर्तव्यों और अधिकारों की ये धाराएँ मैंने यूनियन की मुद्रित नियमावली से ली हैं। इनमें दुर्लभ या दुरूह कही जाने वाली कोई चीज नहीं है परन्तु इन नियमों के द्वारा समाजतान्त्रिक समाज की आत्मीयता कितनी गहरी हो गई है यह अपनी आँखों से देखा है। पश्चिमी सभ्यता की व्यक्ति-स्वाधीनता या व्यक्ति-स्वातन्त्र्यवाद का नारा तोते की तरह हम लगाते हैं परन्तु हम गहराई में उतरकर नहीं देखते कि इस नारे की आड़ में छिपे हुए दानवीय लोभ ने, मनुष्य के साथ मनुष्य के स्वाभाविक सम्पर्क को गहरे नैराश्य से कितना कलुषित

कर दिया है। हमारे देश में धनी और निर्धन का ही भेद नहीं है, जाति-भेद और धर्म-भेद भी हैं। इसके अतिरिक्त विदेशी भाषा में शिक्षा होने के कारण शिक्षित लोग अपने आपको 'बड़ा' और दूसरों को 'छोटा' आदमी समझने लगे हैं—दोनों में सामाजिक आत्मीयता नाम की कोई वस्तु नहीं रह गई है। व्यक्ति-स्वाधीनता के स्वेच्छाचार का यह रूप कितना कुत्सित है। छल, बल और कौशल से बड़े आदमी बनने की चेष्टा, स्वयं ही सब-कुछ भोग कर डालने की लालसा, मनुष्य को धोखा देने तथा अपमानित और वंचित करने के प्रयत्न, हमारे सामाजिक जीवन में कितने विचित्र रूपों में प्रकट हो रहे हैं। सोवियत रूस के मनुष्य ने इस स्तर को पार कर जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। उनके श्रमिक-संघों के संगठन और संचालन की प्रणाली परस्पर की प्रतियोगिता पर नहीं, परस्पर के सहयोग पर आधारित है।

बीस

तीस जुलाई की शाम को हम लोग तासकन्द पहुँचे और नगर के किनारे बगीचे से घिरे हुए एक बंगले में ठहरे। पिछली रात को मास्को में लेखक-संघ के स्वागत-समारोह में भाषण और नृत्य-गीतादि का सिलसिला समाप्त होने में दो बज गए थे। उसके बाद वायुयान द्वारा ढाई हजार मील की यात्रा से थक गया हूँ। संध्या का समय है, अपने देश-जैसी गर्मी है। स्नान और आहार के बाद विश्राम का ही कार्य-क्रम है। बहुत दिनों के बाद पूरा ममाला लगाकर बनाई गई मछली के सुस्वादु रस के साथ पुलाव खाने को मिला है।

मध्य-एशिया के प्रजातन्त्रों में उजबेकिस्तान सबसे बड़ा है। इसमें उजबेक जाति की संख्या ही अधिक है, जनसंख्या ६६ लाख है। तासकन्द में ७॥ लाख आदमी रहते हैं, और सब जातियों की भाँति उजबेक भी मिश्रित जाति है इनकी धमनियों में मंगोल और तातार रक्त है। पन्द्रहवीं शताब्दी में इसी जाति से दिग्विजयी तैमूर का अभ्युत्थान हुआ था। दिल्ली से लगाकर मास्को तक उसके निष्ठुर आक्रमण से काँप उठा था। तैमूर का वंशधर कहा जाने वाला बाबर यहीं के फरगाना नामक स्थान से उठा था, दिल्ली पहुँचा था और मुगल-साम्राज्य की प्रतिष्ठा करने वाला बन गया था। समरकन्द के साथ भारत का सम्बन्ध कई शताब्दी पुराना है। दार्शनिक अल्बेरुनी, ज्योतिषी उलूकबेग और कवि अलीशेरनबाई आदि की ख्याति एक दिन सम्पूर्ण पूर्व में फैल गई थी।

सतरहवीं और अठारहवीं शताब्दी में पश्चिमी साम्राज्यवाद ने जिस प्रकार सम्पूर्ण पूर्व पर अपना अधिकार फैला लिया था, ठीक उसी प्रकार साहसी, युद्ध-कुशल, परिश्रमी, शिल्प और ललित-कलाओं में उन्नत उजबेकों के जातीय जीवन पर भी अन्धकार उतर आया था। जार-साम्राज्य की मुट्ठी में पड़ी हुई उजबेक जाति मुल्ला-तन्त्र और जार-तन्त्र के शोषण और शासन से दरिद्र किसान, मजदूर और खानाबदोश बन गई। अक्तूबर की क्रान्ति ने इतिहास का मोड़ घुमा दिया है। उन्नीस सौ चौबीस-पच्चीस से एक नया युग प्रारम्भ हुआ है, उस दिन ये लोग हमारे देश की स्थिति से भी पीछे—सौ में ९८ व्यक्ति निरक्षर थे। सूखी मरु-भूमि की कृपण मिट्टी पर जी तोड़ परिश्रम करने के बाद जो कुछ मिलता था उसका अधिकांश कुलीन श्रेणी वाले शेखों और बेगों के दल छल-बल से छीन लेते थे, परन्तु एक स्थान पर हमारे साथ इनकी पूरी समता थी, धार्मिक और साम्प्र-दायिक झगड़े यहाँ भी बहुत होते थे। जार के शासन में ये लोग हमारी ही भाँति धार्मिक और साम्प्रदायिक झगड़ों में खून बहाते थे। साम्राज्यवादी भेद-नीति

की विषाक्त शृंखलाओं ने आत्म-विस्मृत समाज के टुकड़ों को ऐसे ही बाँध रखा था जैसे बट-वृक्ष की जड़ें, पुराने और परित्यक्त मन्दिर के श्री-हीन और विकृत ढाँचे को जकड़े रहती हैं।

उजबेकों के दुःख और अपमान को हम समझ सकते हैं। ऐसी ही भेद-नीति और ऐसे ही 'लॉ एण्ड आर्डर' अर्थात् शांति और शृंखला के खेल हमने भी बहुत देखे हैं। अँगरेज शासक गर्व के साथ कहते थे—"यहां हिन्दुओं-मुसलमानों की ही साम्प्रदायिकता नहीं है, प्रान्तीयता ने भी उन लोगों को विभक्त और विच्छिन्न कर रखा है, हमने तुम्हें पिनल कोड द्वारा एकता दी है, हम चले जायँगे तो तुम आपस में झगड़े करोगे और मर मिटोगे।" मार-काट और खून-खराबा अँगरेज पसन्द नहीं करते थे, परन्तु रगड़े-झगड़े बने रहें यह वह भी चाहते थे, इसीलिए अँगरेजी काल में हमें एक शासन तो मिल गया था, एक राष्ट्रीयता नहीं मिली। एक भारतीय राष्ट्र के रूप में खड़े होने की बुनियाद थी, माल-मसाले का भी अभाव न था, फिर भी साम्प्रदायिक विरोध ने अन्त में विभाजन का रूप धारण कर लिया, भारत का इतिहास एक शोक-पूर्ण अध्याय में पहुँच गया और वह हमने स्वीकार किया।

उजबेकिस्तान में औपनिवेशिक साम्राज्यवाद के अवसान का इतिहास पूर्णतया भिन्न है। बोल्शेविक क्रान्तिकारियों ने क्षमता प्राप्त करने के पहले ही रूस के अल्प मतों और सम्प्रदायों की समस्या का समाधान कर लिया था। यह भार एक दिन लेनिन ने स्तालिन को दिया था। स्तालिन द्वारा लिखा हुआ 'मार्क्स-वाद एवं औपनिवेशिक प्रश्न' राष्ट्रीय-विज्ञान के क्षेत्र में एक चिरस्मरणीय दान है। स्तालिन की इस मौलिक गवेषणा के आधार पर ही १९१७ में नवगठित सोवियत सरकार ने घोषणा कर दी थी, (१) रूस के प्रत्येक जन-साधारण को समान अधिकार है; (२) स्वतन्त्र स्वाधीन राष्ट्र बनाने का अर्थात् आत्म-नियन्त्रण का अधिकार सबको है; (३) जाति और धर्म के आधार पर मिलने वाली विशेष सुविधाएँ और बाधाएँ विलुप्त की जाती हैं; (४) सब अल्प मत वाली जातियों या गोष्ठियों को आत्मोन्नति करने के लिए पूरी स्वाधीनता है। अतएव यहाँ क्रमिक सुधार का प्रयत्न नहीं किया गया। विभिन्न श्रेणियों और समुदायों के हितों में सामंजस्य स्थापित करने की चेष्टाएँ नहीं हुईं; एक ही झटके में औप-निवेशिक और सामन्ती व्यवस्था के स्थान पर समाज-तन्त्र की प्रतिष्ठा हो गई है। पुराने कुलीन वर्ग और रूसी शासकों की श्रेणी ने इस कार्य में बड़ी-बड़ी बाधाएँ डाली हैं परन्तु क्रान्तिकारियों ने उनके साथ समझौता नहीं किया है। क्रान्तिकारियों ने एक ओर शोषक-श्रेणी को जड़ से उखाड़ डाला है और दूसरी ओर शोषक-श्रेणी के उत्पत्ति के कारणों को निर्मूल कर दिया है।

नई और आर्थिक बुनियाद पर समाज-व्यवस्था स्थापित करने में समय

लगा है। यहाँ अशिक्षा और धार्मिक मूढ़ता का दौर-दौरा स्त्रियों के बन्धन काटने और उनको शिक्षा देने का प्रयत्न करते ही मुल्ला बिगड़ गए थे। क्रान्तिकारियों ने उजबेकों की कथ्य भाषा को रूसी वर्ण-माला में लिपि-बद्ध किया, व्याकरण बनाया और पाठ्य-पुस्तकें प्रस्तुत कीं; चारों ओर स्कूल खोले गए। जाति-धर्म में निर्विशेष—सब में समान अधिकार की भावना जागृत हुई। समान अधिकार-भोगी बृहतर मानव-परिवार की बुनियाद बन गई; आज अपनी कला, अपनी संस्कृति और अपने साहित्य को साथ लेकर उजबेकी सोवियत राष्ट्र में मस्तक उन्नत करके खड़े हो गए हैं, अब उजबेकिस्तान में एक भी व्यक्ति निरक्षर नहीं है। स्त्रियाँ, 'पाँजजारा' (बुरका) उतार कर अन्तःपुर से बाहर आ गई हैं और पुरुषों के साथ समान अधिकार प्राप्त कर रही हैं। इनके नागरिक जीवन पर २०० वर्ष में जो रूसी संस्कृति का प्रभाव पड़ा है वह स्पष्ट है। स्त्रियों और पुरुषों की वेश-भूषा का रंग-ढंग यूरोपीय है परन्तु पुरुषों ने लबादा और टोपी नहीं छोड़ी, स्त्रियाँ भी सोने-चाँदी, और मूल्यवान रत्नों से सजी हुई टोपियाँ पहनती हैं; दाएँ-बाएँ लम्बी वेणियाँ लटकाती हैं तथा आँखों में काजल और सुरमा लगाती हैं; अलंकार भी काफी पहनती हैं।

२५ वर्ष पहले जो स्त्रियाँ अन्तःपुर में दासी-बाँदी थीं या किसी बेग की अनेक पत्नियों में अन्यतमा बनकर जीवन बिताती थीं, नई समाज-व्यवस्था के शिक्षा-प्रसार ने उनको ऐसा सहज स्वच्छन्द रूप दे दिया है कि देखकर आश्चर्य होता है। जड़-प्रथाओं के दासत्व से, सनातन पूर्व का जो जीवन अवगुण्ठित हो गया था, उसके इस निःसंकोच रूप के दर्शन पाना एक दुर्लभ सौभाग्य है। उजबेक स्त्रियाँ कारखानों में काम करती हैं, ट्रामें और बसें चलाती हैं, सरकारी कार्यालय, शिक्षा-संस्था और रंगमंच—सर्वत्र अपनी योग्यता का परिचय दे रही हैं। कृषि-विज्ञान, चिकित्सा, इंजीनियरिंग और विज्ञान के क्षेत्रों में भी स्त्रियों ने पर्याप्त प्रगति की है। लेखिकाओं, गायिकाओं और नर्तकियों की संख्या भी कम नहीं है।

उजबेक रिपब्लिक की डिप्टी प्रेसीडेण्ट एक महिला हैं, एक दिन उनके कार्यालय में चाय पीने का निमन्त्रण मिला। कुछ प्रतिनिधि, स्थानीय महिलाएँ भी वहाँ उपस्थित थीं। वार्तालाप में मालूम हुआ कि सुप्रीम सोवियत के सदस्यों में महिलाओं की संख्या १३ है; उजबेक-पार्लमेंट में एक सौ। शाखा-सोवियत-मण्डलों में चौदह हजार महिला सदस्य हैं। उजबेकिस्तान के ४७ हजार अध्यापकों में १६ हजार स्त्रियाँ हैं। डॉक्टरों में महिलाओं की संख्या चार सौ है। मध्यकालीन बर्बर सामाजिक व्यवस्था की अधिकार-वंचिता स्त्रियाँ २५ वर्ष में ही चार शताब्दियाँ पार करके बीसवीं शताब्दी में पहुँच गईं।

गृहस्थी की संकीर्ण सीमा में पति, पुत्र तथा आत्मीय स्वजन की सेवा करना और अकल्याण के भय से व्रत रखना—देवताओं से प्रार्थना करना ही स्त्रियों का जीवन था। पुरुषों की बनाई हुई शास्त्र-विधि के बन्धन जब कठोर थे तब कितनी ही नारियों ने अपना प्रताप और अपनी प्रतिभा प्रकट की है, इसके उदाहरण प्रत्येक देश के इतिहास में पाये जाते हैं। इतिहास में धन्य हो जाने वाली ऐसी महीयसी महिलाओं पर हम लोग भी गर्व करते हैं परंतु पुरुष-समाज की विरोधी भावना से लड़कर उन्होंने अपनी ही चेष्टा से जिस प्रकार विकास किया, उस पर विचार किया जाय तो मालूम होगा कि वह नियम नहीं व्यतिक्रम था।

नवीन यूरोप में स्त्री-शिक्षा और स्त्री-स्वाधीनता का जो आन्दोलन उठा था, उसकी लहर पूर्वी देशों में भी पहुँची थी। पिछली शताब्दी में बंगाल के संरक्षण-शीलों और सुधारकों में इस विषय पर जो लम्बे वाद-विवाद हुए हैं उनके इतिहास की चर्चा करने का समय नहीं है। अब पर्याप्त परिवर्तन हो गया है, समाज का विरोध भी काफी ढीला हो चुका है। धर्म के नाम पर जो अनेक अनुशासन स्त्रियों पर लाद दिये गए थे, शिक्षित-वर्ग और सम्पन्न-वर्ग की स्त्रियाँ उनसे कुछ स्वतन्त्र भी हो चुकी हैं, परन्तु समाज की सब श्रेणियों पर आन्दोलन का प्रभाव नहीं पड़ा। अपने देश के अधिकांश पुरुष, यहाँ तक कि शिक्षित कहे जाने वाले लोग भी समझते हैं, कि स्त्रियों को किसी भी परिस्थिति में स्वतन्त्रता देना उचित नहीं है, यदि ऐसा किया जायगा तो पारिवारिक जीवन अशांति-पूर्ण हो जायगा और समाज में उच्छृंखलता बढ़ जायगी। पुरुष जिन विधि-निषेधों को स्वयं नहीं मानते, जिन आचारों का स्वयं पालन नहीं करते, स्त्रियों के लिए उन सबको अत्यन्त आवश्यक समझते हैं। आधुनिक सभ्यता के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करने की चक्षु-लज्जा और कुछ आर्थिक परिवर्तनों के कारण हम विवश होकर स्त्रियों को थोड़ी-बहुत शिक्षा और स्वाधीनता दे रहे हैं परन्तु हृदय अब तक मनु, पराशर और जीमूतवाहन के युग में है।

राममोहन के समय में विधवाओं को पति की चिता में जला डालने का समर्थन करते हुए समाज-पतियों ने यह दलील दी थी कि विधवाएँ व्यभि-चारिणी होकर धर्म का नाश करेंगी। विद्यासागर के विधवा-विवाह-सम्बन्धी प्रस्ताव का विरोध करते हुए शास्त्र-वाक्यों की कुयुक्तियों के साथ-साथ बड़े-बड़े पण्डितों ने यह आशंका प्रकट की थी कि यह अधिकार देने से स्त्रियाँ अपने पतियों को विष खिलाकर मार डालेंगी और अपनी पसन्द के पति ढूंढ़ेंगी। इन सब बातों के सौ वर्ष बाद हिन्दू कोड बिल के विरोध में देवी-स्वरूपिणी भारतीय नारियों के प्रति श्रद्धा-सम्पन्न भारतीय सन्तानों ने एक स्वर से और गला फाड़-फाड़ कर

कहा कि स्त्रियों को सम्पत्ति में उत्तराधिकार दिया जायगा तो देश-भर की स्त्रियाँ स्वैरिणी हो जायँगी और विवाह-विच्छेद को कानूनी रूप मिल जायगा तो पत्नी के साथ गृहस्थी की गाड़ी ढकेलना असम्भव बन जायगा। जो लोग ऐसी निर्बोध प्रत्याशा रखते हैं कि स्त्रियाँ मानवोचित अधिकारों का विसर्जन करके अन्धे संस्कारों की माया में मुग्धा बनी बैठी रहेंगी, उन्हें युग-धर्म के नियम से पराजित होना ही पड़ेगा।

पुरुषों की बनाई हुई विधि-व्यवस्था में हमारे देश की अन्तःपुर-वासिनियाँ मानापमान के विचार से रहित, भय-त्रस्त और निरानन्द जीवन व्यतीत करती रही हैं। यह भी हमने देखा है कि एक जड़-प्रथा के अन्धानुसरण को निष्ठा मान-कर अबोध व्यक्ति जैसे सान्त्वना प्राप्त कर लेता है, वैसे ही वे भी अपने-आपको धोखा देती रही हैं। और अब आधी शताब्दी के बाद देख रहा हूँ कि संसार के हृदय को जागृत करने वाला आह्वान सुनकर हमारे देश की स्त्रियाँ भी देश की विविध मंगलकर्म-शालाओं के उन्मुक्त प्रांगणों में कल्याणी लक्ष्मी की भाँति खड़ी हो गई हैं। बहुत दिनों से इस आशा का पोषण करता चला आ रहा हूँ कि ये जागृत महिलाएँ ही अपने हाथों में ज्ञान के दीप लेंगी और अपनी बहनों के अन्तर में छाए हुए अन्धकार को आलोकित कर देंगी।

इक्कीस

गाँव के बँगले से हम लोग रोज़ दो बार तासकन्द नगर आते-जाते हैं। किंडर गार्टन-स्कूल, संग्रहालय, राष्ट्र का बृहत् ग्रंथागार और पाठ-भवन आदि देख कर मालूम होता है कि ये एशिया का अनुन्नत देश नहीं है; आधुनिक विज्ञान की समृद्धि से इसका सर्वांग जगमगा रहा है। इस बड़े नगर के चारों ओर कितने ही औद्योगिक केन्द्र हैं। कपास की अत्यधिक उपज होने के कारण कपड़े की कई मिलें भी बन गई हैं। कपड़े का एक बड़ा मिल देखा है, इसका नाम 'टैक्सटाइल कम्बाइन' है। बम्बई या अहमदाबाद की आठ-दस मिलों को इकट्ठा कर लिया जाय तो भी वह इसकी बराबरी न कर सकेंगे। मिल में रंगीन कपड़े तथा छींटें आदि बनती हैं। सम्पूर्ण मध्य एशिया के कपड़ों की माँग यहाँ से पूरी की जाती है। १९३४ में इसका प्रारम्भ हुआ था और १९४१ में ही तीन गुना फैल गया था। अब और भी बढ़ाया जा रहा है। दो वर्ग मील में कारखाना है, फूलों के बाग हैं। सड़कें घने पेड़ों की पँक्तियों से सुखद हो रही हैं। सूत और कपड़े बनाने की मशीनें तथा छींटें छापने की रौटरियाँ लेनिनग्राद के कारखाने में बनी हैं। उन्नत धन के चौबीस करघों की देख-भाल एक श्रमिक करता है। ऐसे भी कुछ श्रमिक मिले हैं जो ४८ करघों की देख-भाल अकेले ही कर लेते हैं, घूम-फिर कर सारा कारखाना देखने में चार घण्टे का समय लगा है, सब कहीं की भाँति यहाँ भी कारखाने के साथ-साथ स्कूल, अस्पताल, प्रसूतिका-भवन, विश्रामागार और संस्कृति-केन्द्र हैं। मास्को और स्तालिनग्राद की तरह यहाँ भी श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य, आनन्द और शिक्षा की पूरी व्यवस्था की गई है।

शाम को गोर्की नामक एक बड़ा उद्यान देखा है; उद्यान में सिनेमा, नाच-घर, पाठागार और भाषणों के लिए हॉल आदि भी हैं; बच्चों के खेल-कूद की कितनी ही सामग्री है। ऐसे प्रमोद-उद्यान तासकन्द में अनेक हैं। एक उद्यान में सौ बीघे भूमि पर एक कृत्रिम झील बनाई गई है; स्नान करने और तैरने की व्यवस्था है। छोटी-छोटी नावों पर लड़के-लड़कियाँ वाइच खेलते हैं, झील में घूमने के लिए एक छोटा-सा स्टीमर भी है। चारों ओर उपवन और खाने-पीने की दूकानें हैं।

उद्यान से हम लोग तासकन्द की नव-निर्मित नाट्य-शाला में आ गए हैं, चार खण्ड का विशाल भवन है। प्रेक्षागृह में लगभग दो हजार आदमियों के लिए आसन है। तिखण्डे पर सात बड़े-बड़े हाल हैं, सफेद, काले, नीले, पीले आदि विविध रंगों के संगमर्मर-पत्थरों पर प्राचीन शिल्प-कला का सुन्दर अनुसरण किया गया है। प्रत्येक हॉल की निर्माण-शैली स्वतन्त्र है जिससे थीबा, बुखारा, समरकंद,

फरगाना और तासकन्द का प्राचीन वैशिष्टय मूर्तिमान् हुआ। बीस वर्ष पहले इन लोगों में नाटय-शालाओं का कोई अस्तित्व न था। अब यहाँ की कितनी नर्तकियों और गायिकाओं की ख्याति सम्पूर्ण सोवियत रूस में फैल गई है। विख्यात लोक-नटी 'तमारा खानम' का उल्लेख पहले ही कर चुका हूँ। आज यहाँ स्तालिन-पुर-स्कार की अधिकारिणी श्रीमती गालियास्माइलोभा और मुकायमतुगुनियायेबार का नृत्य देखा है। भारतीय नर्तकियों के साथ इनकी भाव-भंगिमा का सादृश्य विस्मय-जनक है। इनकी बाहुबल्ली का लीलामय संचालन, अंगुलियों की मुद्रा, ग्रीवा की भंगिमा, ताल के साथ मृदु, पद-क्षेप, आँखों की चंचलता आदि से बारम्बार अपने देश का स्मरण हो आता है। ये नृत्य असंस्कृत रूप में बादशाहों और मुल्तानों के हरमों की दासियों और बाँदियों के साथ बँधे हुए थे। आज इन्हें शिक्षिता तरुणियाँ सर्व-साधारण की रस-पिपासा को परितृप्त करने के क्षेत्र में ले आई हैं। इस राष्ट्रीय नाटय-शाला में ६२७ नर्तकियाँ तथा अभिनेता हैं। हमने जब प्रेक्षागृह में प्रवेश किया तब सब दर्शकों ने खड़े होकर अपनी करतल-ध्वनि द्वारा हमारी अभ्य-र्थना की। भारतीय नर-नारियों के साथ इनकी यह पहली भेंट है।

बाल्शेविक क्रान्ति के प्रारम्भिक काल की स्त्री-स्वाधीनता 'पंजारा' या बुर्के की प्रथा और मुल्लाओं के अनुशासन-वर्जन पर आधारित तीन अंक के गीत-नाटय का अभिनय है। नाटक की कहानी यह है कि एक आधुनिक युवक अपनी स्त्री को पर्दे के बाहर ले आया, जिससे लड़की का बाप जलते तेल का बैंगन बन गया, मुल्लाओं ने विवाह-विच्छेद का फतवा दे दिया और बाप लड़की को अपने घर लिवा लाया। सुन्दरी युवती है, मुल्लाओं का आना-जाना होता है, एक बूढ़े मुल्ला के साथ विवाह का षड्यन्त्र प्रारम्भ किया जाता है; माँ आपत्ति करती है परन्तु बाप नहीं सुनता। पड़ोस की स्त्रियों में बेचैनी फैलती है। क्रान्ति की हवा अन्तःपुर तक पहुँच चुकी है, वे लड़की के पति की खबर लाती हैं और लड़की को प्रोत्साहित करती हैं। आखिर कट्टर मुसलमान बाप मुल्लाओं के चक्कर में पड़ कर अपनी स्त्री की हत्या कर डालता है; लड़की की सहन-शक्ति जवाब दे देती है, वह बुर्के के टुकड़े-टुकड़े कर डालती है। उसके करुण संगीत से प्रभावित होकर पड़ोस वाली स्त्रियाँ भी बुर्कामिन-यज्ञ में सम्मिलित हो जाती हैं, नाटक संयोग में समाप्त होता है। नाटक में कट्टर मुल्लाओं की जो खिल्ली उड़ाई गई है उसे देख कर दर्शक तालियाँ बजाते हैं और हँसी से लोट-पोट हो जाते हैं। हमारे देश में ऐसे नाटकों का अभिनय हो तो हॉल में खून-खराबा हो जाय।

समाजतान्त्रिक राष्ट्रीयता के प्रभाव से धर्म-विधि का अन्धानुसरण रूस भर में कहीं नहीं रह गया। सुना जाता है कि क्रान्ति के प्रारम्भिक काल में धार्मिक प्राचीरों से पूर्णतया घिरे हुए सामाजिक जीवन की जड़ता के विरुद्ध, तरुणों ने विद्रोह

किया था। अब धर्माचरण की स्वाधीनता सबने स्वीकार कर ली है। पादरी, पुरोहित और मुल्ला अब भी गिर्जों और मस्जिदों को पकड़े बैठे हैं; कुछ बुड्ढे-बुढ़ियाँ भी कभी-कभी वहाँ जा कर दीर्घ श्वास ले लेते हैं और कोई वहाँ झाँकने भी नहीं जाता। प्राग में हाप्सबुर्ग वंशीय सम्राटों के काल के एक बड़े और प्राचीन गिर्जे में कुछ ईसाई साधुओं को देख कर एक चेक युवक से पूछा था; तुम तो गिर्जों में जाते ही नहीं फिर ये लोग यहाँ क्या करते हैं? युवक ने हँस कर उत्तर दिया था —"They pray for themselves"—ये अपने ही उद्धार के लिए प्रार्थना करते हैं।

बाईस

तीन अगस्त शुक्रवार। ताशकन्द से ५० मील दूर स्थित कागानोविच कृषि-क्षेत्र देखने जा रहे हैं। नगर से बाहर आगए हैं; तारकोल की पक्की सड़क है, दोनों ओर गाँव हैं, खेतों में मकई, कपास और गेहूँ दीख पड़ने लगे हैं। भूमि खोद कर बनाई गई नहरों में पानी भरा है; कहीं-कहीं प्रवाहित भी हो रहा है। कुछ दूर पर नीची गिरि-माला दीख पड़ रही है जिसकी उपत्यका में बहुत दिनों से बंजर पड़ी हुई भूमि पानी पाकर सजीव और हरी हो गई है। हम जिस इलाके से चल रहे हैं वह मरुभूमि नहीं है फिर भी मध्य-एशिया की 'काराकूप' या काली बालू ने बड़ा स्थान घेर रक्खा है। यह मरु अचल नहीं है, अपितु अपनी सूखी और प्यासी जीभ से सरम्य भूमि को भी चाटता जा रहा है। प्रकृति की यह लीला चिरकाल से हो रही है। मनुष्य की दुर्बुद्धि ने वृक्ष और अरण्य नष्ट किए हैं और मरु-भूमि को अपने घर में निमन्त्रित किया है। दिग्विजयी आक्रमणकारियों ने अपने प्रति-पक्षियों के दुर्ग-नगरों को घेरने के लिए पानी की प्राकृतिक और कृत्रिम नहरें काट डालीं और शत्रु को अपने वश में किया। फल-स्वरूप कितने ही नगरों और जन-पदों को बालुका की समाधि मिल गई है।

सोवियत वैज्ञानिकों की दृष्टि क्रान्ति के बाद से ही इस विशाल मरु पर लगी है। इनकी प्रत्येक पंचवर्षीय योजना में मरुभूमि को जोतने की साधना एक मुख्य स्थान अधिकार करती है। सुना गया है कि 'काराकुम' के बीच से प्रवाहित होने वाले आमू दरिया के पानी को बाँधने का काम हाथ में ले लिया गया है। यह नदी उत्तर-पश्चिम की ओर बहती-बहती बुखारा के निकट पहुँचकर सीधे उत्तर की ओर हो जाती है और आर्ल सागर में मिल जाती है। पाँच सौ वर्ष पहले यह पश्चिम की ओर जाती थी और कैस्पियन सागर में मिल जाती थी—तब की सूखी हुई धारा की गहराई अब तक बनी है; नदी को फिर उसी दिशा में प्रवाहित कर दिया जाय तो कैस्पियन सागर की भी उन्नति हो जाय और विस्तीर्ण भूमि उपज से भर जाय। नदी को फिर उसी दिशा में बहाने का संकल्प कर लिया गया है और इसके लिए ५००-६०० मील लम्बी तुर्कमान-केनाल बनाई जा रही है। नहर बनाने का कार्य १९५९ में समाप्त हो जायगा। जितनी आसानी के साथ मैं लिख रहा हूँ यह काम उतना आसान नहीं है। भूमि की निचाई-ऊँचाई चारों ओर के घास-फूस, लता-गुल्म और वृक्ष तथा वर्षा के जल की स्वाभाविक गति आदि

की पूरी जाँच-पड़ताल और तथ्य-संग्रह करने के बाद, बाँध बनाकर नदी पलटी और नई दिशा में बहाई जायगी। बीच-बीच में पानी की बिजली के केन्द्र बनाए जायँगे, नये जनपदों और नगरों का निर्माण होगा।

पेड़ों की घनी दीवारें खड़ी करके नहरों की रक्षा करने का जो प्रबन्ध किया गया है चलते-चलते वह भी देख लिया है। झीलों के किनारे नई बस्तियाँ भी दीख पड़ी हैं। असमतल और ऊसर भूमि के निकट ही कपास और गेहूँ के खेत तथा फलों के बगीचे भी हैं। हमारी गाड़ी पक्की सड़क छोड़ कर कच्चे रास्ते पर उतर आई है। धूप तो पहले ही काफी तेज़ थी अब धूलि का भी सामना हो गया है। "धूलि धूसरित नन्द किशोर" बनकर हम लोगों ने गाँव में प्रवेश किया। रास्ते में खड़े तरुण और तरुणियाँ हमारी प्रतीक्षा कर रहे थे। तुरहियाँ बजा कर हमारा स्वागत किया गया; फिर नृत्य-गीत आरम्भ हुआ। उत्सव के भूषणों से सजी हुई तरुणियों के लोक-संगीत और नृत्य में पर्याप्त भारतीय सादृश्य है। गाँव के प्रधान मुखिया और उनके सहकारी हम लोगों को समिति के दफ्तर में ले गए और वहाँ बिठाया। इस गाँव में ६४० परिवार रहते हैं; जनसंख्या तीन हजार है; भूमि का परिमाण २३४० हेक्टर है (एक हेक्टर = २.४७ एकड़)। गेहूँ, मकई, धान और कपास मुख्य उपज है; अंगूर, सेब और पीच आदि फलों के बगीचे है। सन् १९२९ में गाँव की बुनियाद रखी गई है। झीलों के पानी और वैज्ञानिक खाद से भूमि की उपज ३-४ गुना बढ़ गई है, बढ़ी हुई से शिशुपालनागार, किंडरगार्टन, स्कूल, अस्पताल और संस्कृति-भवन बनाये गए हैं।

जार्जिया के युगदिदी सहकारी कृषि-क्षेत्र के निवासियों की सम्पन्नता से इस गाँव के निवासियों की तुलना नहीं की जा सकती फिर भी ये लोग साधारणतया सम्पन्न हैं। जो लोग मिट्टी की दीवारों से घिरे हुए गर्तों में रहते थे, जिन के घरों में तेल खरीदने वाले पैसों के अभाव से दिया भी न जलता था, गोधूलि की रोशनी में ही जिन्हें रात के भोजनादि से निबट लेना पड़ता था वे चौड़ी सड़कों के किनारे पक्के मकानों में रहते हैं। मकानों के सामने फूलों की क्यारियाँ हैं और चौतरों के ऊपर द्राक्षा-कुंज बने हैं, जिन में अंगूर के गुच्छे लटक रहे हैं। हम ने कुछ अंगूर तोड़े और खाए हैं। इन अंगूरों को सुखाकर किशमिश और मुनक्का भी बनाया जाता है परन्तु अधिकांश भाग से मीठी और थोड़े सुरा-सार वाली शराब बनती है, और वर्ष भर तक पीने के लिये बड़े-बड़े पात्रों में भर ली जाती है। गाँव की सड़कों और घरों में बिजली का प्रकाश है। किसी-किसी किसान के घर में रेडियो और बिजली से रसोई बनाने का सामान भी है।

गाँव के केन्द्र में प्रमोद-भवन, सहकारी दुकान और अनाज का भण्डार है। बगल में नया संस्कृति-भवन बन रहा है; दुकान में रेशमी, ऊनी और सूती कपड़े

हैं। मनिहारी और प्रसाधन की सामग्रियाँ हैं; माल-मसाले और ईरान का इत्र भी है। किसानों की सम्पन्नता और क्रय-क्षमता का आभास मिल रहा है। हमारे देश के ९० प्रतिशत किसान जिन चीजों को कभी खरीद लेने की कल्पना भी नहीं करते उनका यहाँ नित्य व्यवहार होता है। अनाज के सहकारी भण्डार में रक्खी हुई गेहूँ की राशि देख कर अवाक् रह गया। भण्डार के अधिकारी ने बताया कि प्रत्येक परिवार को वर्ष भर में दो टन अनाज दिया जाता है। परन्तु कितने ही परिवार अनाज की पूरी मात्रा नहीं लेते इसलिए इतनी अधिक मात्रा में गेहूँ जमा हो गया है। यह गेहूँ हम नगर की श्रमिक-यूनियन के हाथ बेच देते हैं। इस सहकारी कृषि-क्षेत्र में रेशम के कीड़े भी पाले जाते हैं, कुटीर-शिल्प के रूप में बढ़िया रेशमी कपड़े तैयार हो जाते हैं।

गाँव घूमते समय देखा है कि इसके निवासियों में सब उजबेक ही नहीं हैं इन में कज्जाक, काजार, तुर्कमान और कुछ रूसी किसान भी हैं। इनकी गोष्ठी-गत आचार-प्रथा और वेश-भूषा की विशेषता देखते ही समझ में आ जाती है। गाँव के पूर्व में उद्यान है; उद्यान में एक ओर एक छोटे-मोटे घर में पुस्तकागार और खेल-कूद का सामान है; उसके पास ही चिनार के पेड़ों की पाँति से घिरी हुई नहर है; कल कल स्वर के साथ पानी निकल रहा है और कपास के खेत में जा रहा है। नहर के किनारे भोज का विराट् प्रबन्ध किया गया है, गाँव के प्रमुख नर-नारी आ गए हैं। आयोजन में पूर्वीय देशों के आतिथ्य की उदारता चमक रही है; घरों में ही बनी हुई ६–७ प्रकार की सुमिष्ट सुरा रक्खी है। गाँव के युवकों और युवतियों ने नृत्यगीत प्रारम्भ कर दिया है। भोज समाप्त होने पर कृषि-क्षेत्र के अध्यक्ष ने हम लोगों को उजबेक पोशाकें भेंट कीं। युवतियों ने हमें वे कपड़े पहना दिये और फिर हम से नाचने के लिए आग्रह और अनुरोध करने लगीं। अन्त में लज्जा और शर्म को गोली मार कर एक प्रकार का भालू-नृत्य दिखाना पड़ा तब पीछा छूटा।

संध्या निकट है। हम लोग कपास के खेत, ट्रैक्टर और खेती के अन्य यन्त्रों का संग्रहालय, अश्व-शाला और गोशाला देखकर अध्यक्ष के घर में दाखिल हुए और फिर भोज-सभा जम गई। अध्यक्ष ने हमें पुराने दिनों की कहानी और कृषि-क्षेत्र की क्रमिक उन्नति का इतिहास सुनाया, उनकी अवस्था ६० के निकट पहुंच गई है। दीर्घ, समुन्नत और बलिष्ठ शरीर वाले कर्मठ पुरुष हैं। कहने लगे, और लोगों की भाँति मैं भी भूमि-दास था। हमारे इस गाँव में किसानों के अस्सी-नव्वे घर थे परन्तु जमीन पर दो जोतदारों का ही कब्जा था। हम बटाई पर खेती करते थे यानी भूमि-दास थे। पहले महायुद्ध में मैं जार की सेना में भर्ती होकर गाँव से चला गया, यहाँ आकर्षण ही क्या था? बोल्शेविकों की क्रांति के समय हम पाँच साथी क्रान्तिकारी सैनिक बन कर गाँव लौट आए, परन्तु कोई ठिकाना नहीं लगा। जोत-

दारों के साथ मिल कर मुल्लाओं ने लोगों को भड़का दिया। हम लोग जंगल में रहते थे और सहृदय किसानों की सहायता से अपने दल को मजबूत करते थे। अंत में क्रान्ति-विरोधियों को पराजित होना पड़ा और हमारी विजय हुई।

हमने समझ लिया कि इन लोगों ने कितना कष्ट उठाया है, नासमझी के कारण कितनी भूलें की हैं परन्तु अपने जनसाधारण के जीवन को उन्नत करने के लिए हम ने अब तक क्या किया है ? हम ने केवल भाषण दिए हैं, केवल लेख लिखे हैं और इन लोगों ने दो जली हुई रोटियाँ खा कर सहकारी कृषि-क्षेत्र का निर्माण किया है, नहरें बना कर पानी लाये हैं और सूखी भूमि को उर्वरा कर डाला है। इसके बाद वैज्ञानिक और कृषि-विद्या में कुशल व्यक्ति आगे आये हैं; ट्रैक्टर और अनाज काटने तथा मांड़ने की मशीनें मिली हैं। हजारों वर्ष की पुरानी और अचला कृषि-जीवन की धारा ही पलट गई है। आज ये लोग राष्ट्र की वदान्यता के द्वार पर दया की भीख माँगने वाले नहीं हैं; स्वयंकृती हैं—समाजवादी व्यवस्था को पक्की करके वीर के आसन पर विराजमान हो गये हैं। अपने देश में आराम और ऐश्वर्य प्राप्त करने की निष्ठुर प्रतियोगिता देखता हूँ, यहाँ उत्पन्न खाद्य और सम्पदा को सब में बाँट देने की सहृदय सहयोगिता के दर्शन हो रहे हैं।

तेईस

चार अगस्त शनिवार। निरन्तर भ्रमण से मन और शरीर थक गया है फिर भी समरकन्द का नाम सुन कर उत्साहित हो गया हूँ। मध्यकाल में राज्य, साम्राज्य और वाणिज्य के केन्द्र समरकन्द के ऐश्वर्य की ख्याति परियों की कहानियों की तरह एशिया और यूरोप भर में फैली थी। भारत के साथ समरकन्द के कई प्रकार के सम्बन्ध थे। ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा के केन्द्र के रूप में, एशिया भर में तक्षशिला ने जो स्थान प्राप्त किया था वही स्थान मध्यकाल में समरकन्द को मिल गया था। ज्ञान-चर्चा के क्षेत्र में मुस्लिम शासक सदा उत्साही रहे हैं, इस विषय में वे धार्मिक कट्टरता भी न दिखाते थे। बगदाद और दमिश्क के शासक यहूदी और ईसाई विद्वानों का भी आदर करते थे। तैमूर ने अपनी राजधानी में सब जातियों के पण्डितों को एकत्रित किया था और एक विश्वविद्यालय की स्थापना की थी। विश्वविद्यालय में अरब, ईरानी, यहूदी, ईसाई और चीन के बौद्ध पण्डित ज्योतिष, गणित, रसायन, चिकित्सा, साहित्य और दर्शन पढ़ाते थे। उत्तर-भारत से कितने ही विद्यार्थी अध्ययन करने के लिए समरकन्द जाते थे। इसके अतिरिक्त समरकन्द मध्य-एशिया में शिल्प और वाणिज्य का भी एक बड़ा केन्द्र था। गलीचे, ऊनी वस्त्र, पशुओं के चमड़े, तथा ऊन, रेशम और अस्त्र शस्त्रादि समरकन्द से भारत आते थे। इतिहास और मध्यकालीन यात्रियों के विवरणों के पाठ से मन में समरकन्द का जो मोहक और क्रांति-पूर्ण चित्र बन गया था, वास्तविकता के आघात से वह टुकड़े २ हो गया था। विगत-वैभवा मथुरी पुरी की भाँति यहाँ स्मृति और उसके कुछ निदर्शन ही रह गए हैं। मध्य ऐश्वर्य और विलास, दान और दस्यु-वृत्ति-कालीन प्रेम और ईर्ष्या, हिंसा और हत्या आदि सभी चीज़ों को पीछे फेंक कर स्वेच्छाचारी राज-दर्प को सदा के लिए कब्रों में सुला कर समरकन्द आधुनिक युग में चला आया।

तासकन्द से वायुयान प्रचण्ड मध्याह्न में ही दक्षिण-पूर्व की ओर चला है। दूर पर बरफ़ से ढकी हुई तिएनसिन पर्वत-माला है, साधारण ऊँची शैल-श्रेणी की गोद में हरे-भरे खेत हैं, छोटी-बड़ी नहरों के पानी ने इन्हें उर्वर कर दिया है। डेढ़ घण्टे में ही हवाई जहाज अड्डे पर आ गया है, असह्य गर्मी है जैसे मई महीने की दिल्ली हो। मोटर पर बैठ कर शहर की ओर जा रहे हैं; पुराने दिनों की गवाही देने के लिए कहीं-कहीं पुरानी और परित्यक्त कब्रें और टूटी-फूटी मस्जिदें मिल जाती

हैं; कहीं-कहीं बालू के ऊँचे-ऊँचे टीले हैं; हवा की उड़नेवाली मरुभूमि की बालू से प्रकृति न जाने कब से ऐसे नकली पहाड़ बनाती चली आ रही है। शहर को दक्षिण की ओर छोड़ कर मौटर एक जगह पर रुक गई है; सामने ही सराय है, बगल में शीतल सुपेय और निर्मल जल वाला झरना बह रहा है। पेड़ के नीचे साधारण कुर्सियाँ और टेबुल पड़े है। सराय के एक बालक ने हाथ-मुँह धुलाये और फिर समरकन्द का विख्यात खरबूजा काट कर दिया। खरबूजा तासकन्द में भी खाया है लेकिन यह खुद समरकन्द में पैदा हुआ है। सम्राट् जहाँगीर इस खरबूजे को पानी से भरी चमड़े की मश्कों में डलवा कर और ऊँटों की पीठ पर लदवा कर काश्मीर मंगवाते थे। हम खरबूजे के टुकड़े मुँह में डाल रहे हैं और सम्राट् के रसना-विलास की प्रशंसा कर रहे हैं। बरफ जैसा शीतल सुस्वादु और मनोरम सुगन्ध वाला यह फल सम्राटों के योग्य ही है।

थोड़ी दूर पर एक मान-मन्दिर के ध्वंसावशेष हैं। इसे सोलहवीं शताब्दी में उलूकवेग ने बनवाया था। सोवियन काल में इसकी रक्षा और मरम्मत का कुछ प्रबन्ध किया गया है, देखने योग्य कोई विशेष वस्तु नहीं है। अब हम दिग्विजयी तैमूर के प्रासाद-दुर्ग के सामने खड़े हैं। प्रासाद-दुर्ग एक ऊँचे स्थान पर बना है और क्रमशः ऊँचा होता गया है। सामने तोरण है और सबसे ऊपर नीली रंग की टालियों से छाया हुआ बड़ा गुम्बद। अन्दर रहने के महल तैमूर की स्त्रियों और दासियों की कब्रें तथा एक मस्जिद है। मस्जिद में प्रार्थना-वेदी बनी है और तैमूर की कुरान रक्खी है। सब मिला कर प्रासाद-दुर्ग विशाल है परन्तु न कोई शोभा है न कोई छन्द; जो कुछ है उसका भी अधिकांश भाग भग्न-स्तूप बन गया है। दिल्ली या आगरे में मुगल-स्थापत्य कला का जो चरम उत्कर्ष दीख पड़ता है उसके साथ इसकी आकृति मिलती है; परन्तु वैसी सूक्ष्म और शिल्प-कला तथा सुरुचि यहाँ नहीं है; योजना तो कोई है ही नहीं। सम्राट् की मर्ज़ी के मुताबिक अस्त-व्यस्त रूप में बनाया गया है—अगणित दासों की अस्थि, मज्जा, वसा, अश्रुधारा और दीर्घ श्वास से जो विजय प्राप्त करने और दूसरे की कीर्ति को नष्ट करने के नशे में आँधी की तरह देश-देशान्तरों में घूमता रहा है, जिसका जीवन तम्बुओं में ही कट गया है, उसके पास प्रासादपुरी के स्वर्ण-सिंहासन पर बैठकर निश्चिन्त मन के साथ भोग करने का समय ही कहाँ था। मस्जिद में शिल्पकला की कोई वस्तु नहीं है, मैला गलीचा बिछा हुआ है। एक कोने में दो इमाम बैठे हैं, इनके मुँह उदास हैं। उदासी का कारण सम्भवतः यह है कि अज़ान की आवाज़ सुनकर विश्वासी भक्त अब नहीं आते। मैंने संकेत किया तो इनमें से एक उठकर आ गए हैं। मैंने पूछा कि इस कुरान को स्पर्श कर सकता हूँ। अनुमति मिल गई है। सफेद मोमियाँ कागज़ पर बड़े-बड़े काले अक्षरों में लिखा हुआ है। भारत और ईरान की मध्यकालीन कुरानों की

भांति उसपर रंगों की बहार नहीं दिखाई गई और बेल-बूटे भी नहीं बनाए गए। कुरान देखने के बाद मैंने कहा, मैं हिन्दुस्तान से आया हूँ, सुनकर उनका जरा-कुंचित मुख उज्ज्वल हो गया। बाएँ हाथ से मेरा हाथ पकड़कर अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाया और ईश्वर के नाम पर आशीर्वाद दिया। दिल्ली की जामा-मस्जिद के बूढ़े इमाम का मुख मुझे याद आ गया, उनकी स्तिमित दृष्टि में मैंने अतीत के स्वप्नों की छाया देखी थी। इमाम की मुट्ठी में मैंने कुछ रूबल रख दिए हैं और वह विह्वल होकर मेरे मुख की ओर देख रहे हैं।

शहर के केन्द्र में तैमूर की विशाल मस्जिद है परन्तु इसका तीन-चौथाई भाग भूकम्प से ध्वस्त हो गया है। फतेहपुर सीकरी जैसा बड़ा तोरण किसी तरह खड़ा है। पश्चिम की ओर का भाग ऐसी टूटी-फूटी हालत में है कि किसी भी समय गिर सकता है। इसके निकट तक जाने की आज्ञा नहीं है। मस्जिद की मरम्मत या पुनर्गठन असम्भव है।

थोड़ी दूर पर तैमूर के पौत्र की बनवाई हुई मस्जिद और पाठशाला है। इसके चारों मीनार खड़े हैं। उत्तर और दक्षिण के दरवाजों तथा मुसाफिरखानों की मरम्मत हो रही है। पश्चिम में प्राचीन विद्यालय और छात्रावास बहुत कुछ अक्षत हैं। सोवियत गवर्नमैण्ट ने उसकी मरम्मत पर काफी रुपया खर्च किया है।

तैमूर की समाधि बहुत बड़ी नहीं है। टूट-फूट कर शोभा-हीन हो गई थी; अब नीचे से ऊपर तक मरम्मत हो रही है, गुंबद की नीली टालियां जमाई जा चुकी हैं। ऐतिहासिक स्मृतियों की रक्षा करने में सोवियत सरकार कंजूसी नहीं करती। देखते ही मालूम हो जाता है कि समाधि ईरानी स्थापत्य प्रणाली से बनाई गई थी। नीचे के खण्ड में तैमूर-वंश के तीन पीढ़ियों के पुरुषों और उनकी पत्नियों की कब्रें हैं। दुतल्ले के बीच में संगमर्मर से बनी हुई तीन हाथ ऊँची तैमूर की कब्र है। दोनों बगलों में उलूकबेग और उनके एक अन्य प्रिय पुत्र की कब्र है। सिरहाने की ओर तैमर के धर्मगुरु सो रहे हैं। जिस व्यक्ति ने लाखों कटे हुए नर-मुण्डों पर अपनी विजय-पताका उड़ाई थी, उसका मस्तक अन्त में विद्रोही की तलवार से कटकर धूलि चाटने लगा था। तैमूर की कब्र से उसका कंकाल निकालकर देखा गया है सिर धड़ से अलग मिला है। कंकाल फिर कब्र में रख दिया गया है परन्तु उससे तैमूर की एक प्रतिमूर्ति बना ली गई है जो संग्रहालय में रखी है। तैमूर लँगड़े थे परन्तु उनका शरीर ६ फुट लम्बा और काफी बलिष्ठ था।

समरकन्द काफी बड़ा शहर है, जन-संख्या दो लाख से भी अधिक है। मध्य-काल और बीसवीं शताब्दी का आदमी हाथ से हाथ मिलाए दीख पड़ते हैं, सड़कों पर खुले मुँह वाली आधुनिकाओं के निःसंकोच आवागमन के साथ सिर से पैर तक ढकी हुई कुछ औरतें भी चलती रहती हैं। ट्रामें और बसें चलती हैं, बड़ी चौड़ी

सड़कों के दीनों ओर विशाल इमारतें हैं। यहाँ के गलीचे, ऊनी और रेशमी कपड़े तथा चाँदी, ताँबे और काँसे की बनी हुई चीजें विख्यात हैं; इन सब चीजों के कारखाने देखने का समय नहीं मिला। संग्रहालय में रक्खे नमूने को ही देखकर कौतूहल शांत कर लिया है। शिक्षा-विभाग के एक बड़े अधिकारी ने हमारे स्वागत में भोज दिया, पूर्व के आतिथ्य की उदारता यहाँ भी है, भोज्य वस्तुओं का विपुल समावेश है। अधिकारी महोदय ने भारत और समरकन्द के पुराने सम्बन्धों की चर्चा करते हुए कहा कि दूसरे देशों पर हमले करने, उन्हें लूटने और उनके निवासियों को दास बनाने के दिन लद गए हैं। विज्ञान ने विभिन्न देशों के मनुष्यों को निकटतर कर दिया है। वह दिन भी दूर नहीं है, जब हमारे देश और भारत के बीच में हवाई जहाज का मार्ग खुल जायगा। शिक्षा और संस्कृति के आदान-प्रदान द्वारा तब हम और घनिष्ठ हो जायँगे।

शाम को तासकन्द लौट आये। स्थानीय लेखक-संघ द्वारा किए गए विदा-समारोह में दोनों देशों की साहित्य-चर्चा हो रही है। उजबेक लोक-साहित्य पुरानी गाथाओं और कहानियों की दृष्टि से समृद्ध है। लोगों ने इस निधि को संग्रह करके प्रकाशित कर लिया है। आधुनिक साहित्य भी काफी है। अपने देश में आजकल संस्कृति शब्द बहुत सुन पड़ता है। बंगाल के तरुण अपने क्लबों और संघों में संस्कृति-सम्मेलन करते रहते हैं, परन्तु इस बात में सन्देह है कि हमारे विज्ञ पुरुष भी जिस 'भारतीय संस्कृति' पर गर्व और गौरव करते हैं, अपने अन्तर में उसके सम्पूर्ण स्वरूप की कोई स्पष्ट धारणा रखते हैं या नहीं। जिस देश में प्रतिशत ८० व्यक्तियों की जीवन-यात्रा का मान-दण्ड इतना नीचा है कि वे स्वाभाविक प्रवृत्तियों के आवेग से चलने वाले जीवन का निर्वाह करने के अतिरिक्त और कुछ सोच ही नहीं सकते हैं, वहाँ प्राचीन सभ्यता के उत्तराधिकारी होते हुए भी सर्वसाधारण में अपनी संस्कृति के प्रति अनुराग हो ही नहीं सकता। उजबेकों की भी यही दशा थी। कृषि, पशु-पालन और कुटीर उद्योग की एक चिरन्तन-धारा में पड़कर किसी तरह जीवित रहने की चेष्टा में संस्कृति का विलास नहीं हो सकता। आज अवस्था में परिवर्त्तन हो गया है। अब कारखानें खुल गए हैं, सिंचाई और खती की वैज्ञानिक-व्यवस्था हो गई है। मनुष्य ने निर्द्वन्द्व जीवन का सुख देखा है इसीलिए साहित्य, संगीत और नृत्य-कला में नये जीवन की हिलोर आ गयी है। यहाँ की सांस्कृतिक सम्पदा श्रेणी विशेष में सीमित नहीं है। जो मानव-मात्र की सम्पदा है, सर्वसाधारण उसका पानी और हवा की भांति उपयोग करते हैं।

चौबीस

५ अगस्त। रविवार की दोपहर को मास्को लौट आये हैं, सोवियत रूस में हमारा भ्रमण समाप्त हो चुका है। इतने थोड़े समय में यूरोप और एशिया में फैले हुए इस विशाल देश का एक सामान्य अंश देखने की ही सुविधा मिल सकी है, आधुनिक काल के आकाश-चारी और तीव्र गति वाले वायुयान न होते तो दो महीने में जो कुछ देख लिया है उसके लिए एक वर्ष भी सम्भवत: पर्याप्त न होता। कोई स्थूल दृष्टि वाला यात्री भी स्वीकार करेगा कि यहाँ एक नई सभ्यता का अभ्युदय हो रहा है। "होटल नेशनल" में दो-चार अंगरेज और अमेरिकन यात्रियों से चर्चा हुई है, वे लोग भी मानते हैं कि यहाँ के श्रमिकों और बुद्धिजीवियों का जीवन सुखी और स्वच्छन्द है। परन्तु उन्हें सन्देह है कि पश्चिमी सभ्यता की रीति-नीति को एकदम उलट कर जो समाजवादी सभ्यता बनाई जा रही है वह स्थायी होगी या नहीं। सोवियत की आलोचना करने वाले कहते हैं, मार्क्स की कट्टर अर्थ-नीति और जबरदस्ती के द्वारा जनसाधारण की विचार-बुद्धि को एक सांचे में ढालने का जो प्रयत्न हो रहा है, वह स्थायी नहीं हो सकता, यह अपवाद सम्पूर्ण सत्य नहीं है। सोवियत के बुद्धिजीवियों की दृष्टि से विचार किया जाय तो मालूम होगा कि आर्थिक और सामाजिक समस्याओं पर स्वतन्त्र रूप से विचार करने का मार्ग कहीं भी अवरुद्ध नहीं किया गया है। जहाँ शिक्षा की व्याप्ति और विस्तार अगाध है वहाँ विचार की बहुमुखी गति को रोका नहीं जा सकता। इन लोगों ने ऐसा प्रयास भी नहीं किया, और इसीलिए जीवन का स्वच्छन्द विकास यहाँ स्वाभाविक हो गया है।

एक सज्जन कहने लगे; सम्पूर्ण पूँजीवादी संसार के विरोध से घिर कर जिस क्रान्तिकारी आवेग से यह लोग समाजवाद से कम्युनिज़्म की ओर यात्रा कर रहे हैं वह आवेग लक्ष्य प्राप्ति के बाद शिथिल हो जायगा, आज की यह गहरी एकता तब नष्ट हो जायगी और समाज में श्रेणी भेद खड़ा हो जायगा।

पश्चिम के मानव-हितैषी यही विश्वास लिये बैठे हैं परन्तु भविष्य की काल्पनिक आकृति को लेकर इस समय तर्क करना व्यर्थ है। पिछले तीन हजार वर्षों में धर्म और उसके अनुशासन द्वारा मनुष्य को बाँध रखने की बीभत्स और पर्याप्त चेष्टा की गई किन्तु युक्तिवादी विज्ञान ने इस मोह को नष्ट करके मनुष्य की मुक्ति को सम्भव कर दिया है। सोवियत ने विज्ञान की यही साधना ग्रहण की

है, ऐसा सन्देह करने का कोई कारण मुझे नहीं दीख पड़ा कि धार्मिक मूढ़ता से निकल कर ये लोग एक और युक्तिहीन मूढ़ता के भ्रमर में फँस गए हैं। व्यक्तिगत स्वार्थों के आधार पर निर्मित सभ्यता के कारण हमारी विचार-धारा और हमारा लोक-व्यवहार जिस साँचे में ढल गया है, वही लेकर हम दूसरे की स्थिति पर विचार करें तो हमारी दृष्टि में विकार आ जाने की आशंका बनी ही रहेगी। जार्जिया और उजबेकिस्तान में यही तो देखा है कि सोवियत भूमि में परस्पर भिन्न कितनी ही जातियाँ, गोष्ठियाँ और सम्प्रदाय अपने-अपने आचार, नियम, रुचि, भाषा, एवं संस्कृति के साथ अपनी जीवन-यात्रा का निर्वाह कर रहे हैं, किसी के मार्ग में कोई बाधा नहीं है। सहकारी प्रथा से खाद्य और पण्य में समृद्धि करने की चेष्टा और सांस्कृतिक सृष्टि ने, इन सबको मिला कर एक कर दिया है,—भिन्नता में भी एकता स्थापित कर ली है।

हम जब यह सोचते है कि रूस की क्या हालत थी और क्या हो गई है तो अवाक् हो जाना पड़ता है। १९१७ से १९२२ तक रूस के सम्बन्ध में जो समाचार हमारे देश के स्वदेशी और विदेशी पत्रों में रूटर के रीगा स्थित संवाददाता द्वारा दिये जाते थे, उनसे यही मालूम होता था कि बोल्शेविकों के पल्ले में पड़ा हुआ रूस रसातल में पहुँच गया है। नगरों की सड़कों पर घास जम गई है, पक्के मकान खाली पड़े हैं और साँय-साँय कर रहे हैं, गाँव में खेत जोते नहीं गए; जंगल बन गए हैं। कारखानों की मशीनों में मोर्चा लग गया है, रेलें अचल हो गई हैं, चारों ओर अशांति फैली है। इस पर्वत-प्रमाण ध्वंस-स्तूप पर; पूंजीवादी विश्व की प्रतिकूलता तथा निन्दा-प्रचार के अपवित्र आयोजन में भी नये रूस का निर्माण सम्भव हो गया।

नवीन रूस सिर उठा कर खड़ा ही हुआ था कि यूरोप के प्रांगण में नाजियों की फासिस्ट बर्बरता प्रकट हो गई। दूसरे के अधिकार को कुचल डालने वाली बल-गर्वित निष्ठुरता अपने निर्लज्ज रूप में दिन की रोशनी में ही छाती तान कर खड़ी हो गई। देखते ही देखते नात्सी सेना ज्वाला-मुखी के गले हुए लावे की तरह ध्वंस की प्रलयंकर पताका उड़ाती हुई सोवियत भूमि पर टूट पड़ी। ऐसा जान पड़ने लगा कि लेनिन और स्तालिन की सृष्टि नष्ट हो जायगी परन्तु समाजतान्त्रिक राष्ट्र में एक और भी बड़ी तथा अजेय शक्ति संगठित हो गई थी; पूँजीवादी संसार के सामने राजनीतिज्ञ इस शक्ति की कल्पना भी न कर पाये थे। असम्भव सम्भव हो गया। सोवियत जनता लाल फौज की पीठ पर तन कर खड़ी हो गई, शत्रु की गति रुक गई। चार वर्ष के भयंकरतम युद्ध में भी सोवियत रूस ने निर्माणात्मक कार्य बन्द नहीं किए और विजय प्राप्त करने के क्षण से ही यह अपने कर्त्तव्य की साधना में अहंकार-शून्य और अनुद्विग्न चित्त से जुट गया।

ऐसे सोवियत रूस के जन-जीवन और सृष्टि निर्माण को मन भर कर देखा है। अमेरिका जब अपना सम्पूर्ण ऐश्वर्य रण-देवता के अर्घ्य की रचना में उत्सर्ग कर रहा है और अमेरिका के नेतृत्व में एकत्रित सैनिक शक्ति अतलान्तिक से लगाकर प्रशान्त महासागर के किनारों तक पुरानी छुरी पर नई धार रखती फिर रही है, तब यहाँ देख रहा हूँ कि इन लोगों में कोई बेचैनी नहीं है, कोई शंका नहीं है। अमेरिका ताल ठोंक कर कह रहा है "अद्य युद्ध त्वया मया"। सोवियत स्मित मुख से कह रहा है, हम शान्ति-नीति पर विश्वास करते हैं, मनुष्य की शुभ बुद्धि पर भरोसा रखते हैं। विश्व-शांति का आग्रह और अकृत्रिम आवेग देख कर आनन्द मिला है। मनुष्यत्व पर अविचल विश्वास ले कर शांति-आन्दोलन के नेता स्तालिन मानव-मात्र को एक और भयावह युद्ध की दुर्गति से बचाने की साधना में समासीन है।

हम लोगों को इस महान् लोकनायक के दर्शनों का सुयोग इतने निकट भी जा कर नहीं मिल सका, यह दुःख मन में रह गया है। मास्को पहुँचते ही हमें सोवियत सेना के वार्षिक अनुष्ठान में सम्मिलित होने का निमन्त्रण मिला था। हम प्रसन्न हुए थे कि वहाँ स्तालिन तथा अन्यान्य नेताओं के दर्शन हो जायँगे परन्तु जलवायु के कारण वह उत्सव स्थगित कर दिया गया और फिर जब हुआ तब हम लेनिनग्राद में थे।

पाँच अगस्त की रात को समारोह-पूर्ण भोज में हमें बिदा दी गई। मास्को के साहित्यिकों और पत्रकारों ने अपने भाषणों में भारत और सोवियत में दृढ़ मैत्री की कामना प्रकट की। हमने कहा, आप के बड़े देश की नई समाज-व्यवस्था और गठन एवं पुनर्गठन की चर्चा हमारे देश की जनता आग्रह के साथ करती है। हम लोगों ने जो कुछ यहाँ देखा है वह भी अपने देशवासियों को बतायँगे। बच्चों और किशोरों के लालन-पालन तथा शिक्षा-दान के लिए आप ने जो अकृपण आयोजन किया है उसमें हमारे ग्रहण करने योग्य बहुत कुछ है। विश्व शांति रक्षा के आग्रह में हम लोग आप के सतीर्थ और सहयात्री हैं।

रात को दो बजे होटल लौटा हूँ। खिड़की से देख रहा हूँ कि क्रेमलिन अपनी अचल और प्रतिष्ठित महिमा से उन्नत खड़ा है, उत्तरी तोरण के समुन्नत ललाट पर रक्तिम तारिका का समुज्ज्वल विजय-तिलक चमक रहा है।